वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 339
ISBN 978-93-80353-97-5

आर्यिका श्री रत्नमती परिचय एवं पूजा

–मंगल प्रेरणा एवं आशीर्वाद –

पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

–प्रस्तुति –

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी

शरदपूर्णिमा महोत्सव, 11 अक्टूबर 2011 को जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा घोषित ''प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर वर्ष'' के अन्तर्गत पूज्य आर्यिका श्री रत्नमती माताजी के 41वें दीक्षादिवस-मगशिर कृ. तीज के उपलक्ष्य में प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र., फोन नं.- (01233) 280184, 280994

Website : www.jambudweep.org

E-mail : jambudweeptirth@gmail.com

प्रथम संस्करण	वीर नि. सं. 2538	मूल्य
1100 प्रतियाँ	मगशिर कृ. 3	20/-रु.
	13 नवम्बर 2011, रविवार	

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं।

–: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :–

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

–: मार्गदर्शन :–

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

–: निर्देशन :–

धर्मदिवाकर पीठाधीश क्षुल्लकरत्न श्री मोतीसागर जी महाराज

–: सम्पादक :–

कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्र कुमार जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

पूज्य आर्यिका श्री रत्नमती माताजी

आदिब्रह्मा भगवान ऋषभदेव की जन्मभूमि अयोध्या और उसके आस-पास के क्षेत्र को भी अवध के नाम से जाना जाता है। वैसे इन प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव और उनके प्रथम पुत्र चक्रवर्ती सम्राट् भरत के समय वह अयोध्या नगरी 12 योजन लम्बी थी अतः 96 मील होने से लखनऊ, टिकैतनगर, त्रिलोकपुर, बाराबंकी, महमूदाबाद आदि नगर उस समय अयोध्या नगरी की पवित्र भूमि की सीमा में विद्यमान थे। वस्तुतः आज भी अयोध्या तीर्थ की पवित्रता से सम्पूर्ण अवध का वातावरण सुवासित, धर्मपरायण एवं परम पवित्र है।

उसी अवधप्रान्त के जिला सीतापुर के अन्तर्गत महमूदाबाद नामक एक नगर है, जहाँ विशाल जिनमंदिर के निकट वर्तमान में 60-70 जैन घर हैं। उसी नगरी में एक सुखपालदास जी नाम के श्रेष्ठी निवास करते थे। अग्रवाल जातीय लाला सुखपालदास जी की धर्मपत्नी का नाम मत्तोदेवी था। पूरे नगर में धर्मात्मा के रूप में प्रसिद्ध सुखपालदास जी भगवान की नित्य पूजन के साथ-साथ स्वाध्याय भी करते थे। सात्त्विक प्रवृत्ति वाले इन महामना श्रावक की धर्मपत्नी भी पतिव्रता आदि गुणों से सहित धर्मपरायण एवं अत्यन्त सरल प्रकृति की थीं। इन धर्मनिष्ठ दम्पत्ति के चार संताने थीं, जिनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं– 1. शिवप्यारी देवी 2. मोहिनी देवी 3. महिपालदास 4. भगवानदास। पिता सुखपालदास जी ने इन सभी संतानों को धर्ममय संस्कारों से विशेष संस्कारित किया था।

ईसवी सन् 1914 में इन धर्मपरायण दम्पत्ति की बगिया में द्वितीय सन्तान

के रूप में जन्मी कन्या का नाम पिता ने बड़े ही प्यार से 'मोहिनी' रखा था और माता-पिता, कुटुम्बीजनों, यहाँ तक की नगरवासियों का भी इस कन्या पर विशेष स्नेह था। कन्या के कुछ बड़ी होने पर पिता सुखपालदास जी उसकी विशेष देखरेख करते, वे प्रतिदिन रात्रि में अपने हाथों से बादाम भिगोकर प्रातः छीलकर दूध के साथ उस मोहिनी को देते तथा रोज उसे अपने साथ मंदिर भी ले जाते थे। 5-6 वर्ष की उम्र में स्कूल जाने पर थोड़े ही दिनों में मोहिनी देवी ने 3-4 कक्षा तक अध्ययन कर लिया। चूँकि महमूदाबाद का इलाका मुस्लिम इलाका था अतः पिताजी ने अपने महीपाल पुत्र की शिक्षा हेतु एक मौलवी अध्यापक की व्यवस्था कर रखी थी, वे उन्हें उर्दू पढ़ाते थे और तीक्ष्ण बुद्धि की धनी कन्या मोहिनी अपने छोटे भाई को उर्दू पढ़ते देख स्वयं भी उर्दू पढ़ना सीख गई। घर में सबसे छोटे भाई भगवानदास के जन्म लेते ही मोहिनी का उसके प्रति विशेष वात्सल्य होने से मोहिनी ने स्कूल जाना छोड़ दिया। प्रायः देखा जाता है कि होनहार, कुशाग्र बुद्धि के छात्र-छात्राएं गुरु के लिए विशेष कृपापात्र होते हैं और गुरु का उन पर विशेष स्नेह रहता है अतः जब कन्या मोहिनी कुछ दिन स्कूल नहीं गईं, तो उनकी अध्यापिकाएँ आकर लाला सुखपालदास जी से उसकी कुशाग्र बुद्धि के कारण उसे स्कूल भेजने का आग्रह करतीं, साथ ही कहतीं कि इसके बगैर तो हमारा स्कूल ही सूना हो जाता है। पिताजी की प्रेरणा के बाद भी मोहिनी भाई को खिलाने का बहाना कर स्कूल जाने को मना कर देंती। चूँकि उस समय कन्याओं को ज्यादा पढ़ाने की परम्परा नहीं थी और मुसलमानी इलाका होने के कारण माँ मत्तोदेवी भी कन्या को स्कूल भेजने का आग्रह नहीं करती थीं, अतः उनकी लौकिक शिक्षा अल्प ही रही। पुनः पिताजी ने मोहिनी के अन्दर धार्मिक संस्कार डालने हेतु उसे भक्तामर, तत्त्वार्थसूत्र आदि का अध्ययन कराना प्रारंभ किया और रात्रि में पूरे परिवार को एक साथ बिठाकर मोहिनी से शास्त्र पढ़वाते और बड़े खुश होते थे पुनः सबको शास्त्र का अर्थ भी समझाते थे।

एक बार पिता ने मोहिनी को एक मुद्रित ग्रंथ 'पद्मनन्दिपंचविंशतिका' देकर उसका स्वाध्याय करने को कहा। मोहिनी ने पिता की आज्ञा स्वीकार कर उस ग्रंथ का स्वाध्याय किया और उस स्वाध्याय का प्रतिफल यह रहा कि मोहिनी ने उस ग्रंथ में ब्रह्मचर्य व्रत के महत्त्व को पढ़कर भगवान की प्रतिमा के सम्मुख अष्टमी, चतुर्दशी के दिन ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने का आजीवन नियम ले लिया और किसी को इस व्रत के बारे में विदित भी न हो सका। चूँकि जिनमंदिर में

प्रतिदिन सुखपालदास जी ही शास्त्र वांचते थे अतः सभी इन्हें पण्डित जी कहकर पुकारते थे। बड़े पुत्र महिपालदास जी कुश्ती के अच्छे खिलाड़ी बन गए थे और इलाके में बड़ी-बड़ी कुश्ती कर कई एक प्रतियोगिता जीती थीं। मोहिनी देवी के पिताजी पहले कपड़े का व्यवसाय करते थे इनका नियम था देवपूजा करके ही दुकान खोलना और अगर मंदिर न हो तो 'जाप्य' करके ही ग्राहक से बात करना। उनके इस नियम के कारण ही उनकी अंत समाधि बहुत ही अच्छी हुई। एक बार वे बिसवां में व्यापार हेतु गये, प्रातः ही एक ग्राहक आ गया, तब उन्होंने कहा – भाई! मैं जाप्य करके ही वार्तालाप करूँगा। तब वह ग्राहक बाहर बैठ गया पुनः वह शुद्ध वस्त्र पहनकर जाप्य करने बैठे और जाप्य करते-करते ही उनके प्राण पखेरू उड़ जाने से उन्हें उत्तम गति की प्राप्ति हुई। उधर जब बहुत देर हो गई, तो उस ग्राहक ने अंदर जाकर देखा, तो उन्हें मृत पाया। तब परिवार के लोगों को बुलाकर उनकी अन्त्येष्टि की गई। वास्तव में बंधुओं! एक छोटा से छोटा नियम भी इस जीव को संसार से पार करने में सहकारी कारण बन जाता है, इसीलिए धर्मगुरु सदैव हमें कोई न कोई व्रत नियम लेने की प्रेरणा प्रदान करते हैं।

सेठ सुखपालदास जी ने अपने सामने ही अपने सभी पुत्र-पुत्रियों का विवाह कर दिया था, जिसमें लाडली पुत्री मोहिनी का उन्होंने अयोध्या के निकट बसे धर्मपरायण नगर बाराबंकी जिले में स्थित टिकैतनगर नामक ग्राम के धर्मात्मा श्रावक लाला धन्यकुमार जी एवं उनकी धर्मपत्नी फूलमती के द्वितीय पुत्र छोटेलाल जी के साथ किया था। लाला धन्यकुमार जी ने महमूदाबाद के लाला सुखपाल जी की बहुत ही प्रशंसा सुन रखी थी, साथ ही मोहिनी के गुणों से भी बहुत प्रभावित थे। सुखपालदास जी ने भी उनके पुत्र में एक वर के सभी गुणों को देखकर तुरंत स्वीकृति प्रदान कर दी और शुभ मुहूर्त में चि. छोटेलाल जी के साथ आयु. मोहिनी देवी का पाणिग्रहण संस्कार हो गया। माता-पिता ने अश्रुपूरित नेत्रों से अपनी प्यारी पुत्री को विदाई दी, उस समय सन् 1932 में मोहिनी देवी की उम्र 18 वर्ष मात्र थी। विदाई के समय यूँ तो पिता जी ने अपनी दुलारी को दहेज में यथायोग्य सब कुछ प्रदान किया, किन्तु जब उनके मन को पूर्ण संतुष्टि नहीं हुई, तो उन्होंने मोहिनी को ''पद्मनन्दिपंचविंशतिका'' ग्रंथ को सच्चे दहेज के रूप में देकर कहा – बिटिया मोहिनी! तुम हमेशा इस ग्रंथ का स्वाध्याय करती रहना, इसी से तुम्हारे गृहस्थाश्रम में सुख और शांति

की वृद्धि होगी और तुम्हारा यह नरभव पाना सफल हो जायेगा। पुत्री मोहिनी ने भी पिता के द्वारा स्नेहपूर्वक प्रदत्त सच्चे दहेजरूप ग्रंथ को सबसे अधिक मूल्यवान समझा।

ससुराल में मंगल प्रवेश कर मोहिनी ने पिता द्वारा प्रदत्त उस ग्रंथ को अनमोल निधि के रूप में संभाल कर रखा और नियमपूर्वक प्रतिदिन देवदर्शन के पश्चात् उसका स्वाध्याय किया। यहाँ इस भरे-पूरे परिवार में मोहिनी को घुलते-मिलते देर न लगी। घर में देवदर्शन, रात्रि भोजन त्याग, जल छानकर पीना, सायंकाल मंदिर जाकर आरती करना और शास्त्र सभा में बैठकर विनयपूर्वक शास्त्र सुनना आदि श्रावकोचित्त सभी क्रियाएँ होती थीं। घर के निकट जिनमंदिर होने से मंदिर के घंटे, पूजा-पाठ व आरती की आवाज घर बैठे कानों में गूंजा करती थी। गृहस्थधर्म का परिपालन करती हुई मोहिनी देवी ने सन् 1934 में आसोज सुदी पूर्णिमा – शरदपूर्णिमा की रात्रि में प्रथम पुष्प के रूप में एक कन्या रत्न को जन्म दिया, जिसकी शुभ्र चांदनी आज सारे भारतवर्ष में फैल रही है। मैना के जन्म से पहले ही मोहिनी देवी ने मैनासुन्दरी नाटक पढ़ा था और उन्हें सुरसुन्दरी-मैनासुन्दरी का संवाद याद था, उसे वे हमेशा गुनगुनाया करती थीं और यही संस्कार गर्भस्थ बालिका पर अच्छी तरह से पड़ गए। माता मोहिनी प्रतिदिन प्रातः उठकर सामायिक करती, पुनः स्नानादि से निवृत्त होकर मंदिर में जाकर भगवान की पूजा करके रसोई बनाती थीं और छोटे बच्चों को दूध पिलाते समय स्वाध्याय और भक्तामर आदि के पाठ किया करती थीं, जिससे वह दूध भी अमृत तुल्य बन जाता था और बच्चों में धार्मिक संस्कार पड़ते जाते थे। प्रतिदिन सायंकाल वे स्वयं मंदिर जातीं और बच्चों को भी भेजती थीं, प्रतिदिन किसी भी बालक को मंदिर जाए बिना नाश्ता भी नहीं मिलता था, यही कारण था कि माता मोहिनी की 13 संतानें इसी धर्म के साँचे में ढलती चली गईं। माता मोहिनी अपनी पुत्री मैना की बातों को जैनागम से प्रमाणित समझकर सदैव उनकी बातों को मान्यता प्रदान करती थीं।

सन् 1952 में जब आपकी पुत्री मैना ने गृहत्याग किया, उस समय आपने उन्हें अपनी स्वीकृति देते हुए मैना से वचन लिया था कि बेटी! जैसे आज मैं तुझे संसार से पार होने में सहयोग दे रही हूँ, इसी प्रकार एक दिन तुम भी मुझे गृहस्थी के जाल से निकालकर मोक्षमार्ग में लगा देना।

इस प्रकार माता मोहिनी ने अपनी सभी सन्तानों को सुसंस्कारित कर

गृहस्थोचित सभी क्रियाओं का कुशल संचालन करते हुए अपने पति लाला छोटेलाल जी के अन्त समय में उनकी सुन्दर समाधि कराकर नारी जाति के लिए एक अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। अपने पुत्र-पुत्रियों को उन्होंने उसी प्रकार पालने में शिक्षा प्रदान की, जिस प्रकार रानी मदालसा ने अपने पुत्रों को पालने में शिक्षा दिया था कि– शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरंजनोऽसि, संसार माया परिवर्जितोऽसि' हे पुत्र! तू शुद्ध है, बुद्ध है, निरंजन है और संसार की माया से रहित है। ऐसा सुन-सुनकर उसके सभी पुत्र युवा होकर विरक्त हो घर से चले जाते थे।

उन पुत्र-पुत्रियों की भांति ही माता मोहिनी की भी तीन पुत्रियाँ एवं एक पुत्र गृहबंधन से निकल गए और शेष 6 पुत्रियाँ व 3 पुत्र गृहस्थ धर्म में रहकर देव-शास्त्र-गुरु का दृढ़ श्रद्धान कर धर्माराधनापूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

मोहिनी माता बनीं आर्यिका रत्नमती–सन् 1971 में संघ का चातुर्मास अजमेर शहर में हो रहा था। उस समय मोहिनी देवी अपने बड़े पुत्र कैलाशचंद व पुत्रवधू के साथ संघ के दर्शनार्थ आईं। वहाँ एक दिन वे ज्ञानमती माताजी से कहने लगीं– माताजी! अब मेरी इच्छा घर जाने की नहीं है। अब मेरा मन पूर्णरूपेण विरक्त हो चुका है, मैं दीक्षा लेकर अपना आत्मकल्याण करना चाहती हूँ। उस समय ज्ञानमती माताजी ने अपने दिये हुए वचन को निभाया और उनके मुख से इतना सुनते ही बहुत प्रसन्न होकर कहने लगीं कि आपने बहुत अच्छा सोचा है। देखो–

''जब लो न रोग जरा गहे, तब लो झटिति निज हित करो।''

इस पंक्ति के अनुसार अभी आपका शरीर साथ दे रहा है अतः अब आपको किसी की भी परवाह न कर आत्मसाधना में ही लग जाना चाहिए। इसके साथ ही माताजी ने उन्हें यह भी बता दिया कि मैंने सुगंधदशमी के दिन माधुरी को आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत दे दिया है, उसकी शादी का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता। यह सुनकर आश्चर्यचकित मोहिनी माता बोलीं कि माताजी! अभी तो माधुरी मात्र 13 वर्ष की है, वह ब्रह्मचर्य का अर्थ क्या समझे। अभी से व्रत न देकर कुछ दिन संघ में रखकर धर्म पढ़ा देतीं, तो अच्छा था। पुनः वे कहने लगीं कि अब मैं किसी के मोक्षमार्ग में बाधक क्यों बनूँ, जिसका जो भाग्य होगा, सो होगा। मुझे तो अब आर्यिका दीक्षा लेनी है।''

माताजी ने उसी समय रवीन्द्र कुमार को बुलाकर माँ के भाव बता दिये,

जिसे सुनकर माँ के कमजोर शरीर एवं स्वास्थ्य की दृष्टि से रवीन्द्र जी एकदम विचलित हो गये, किन्तु माता मोहिनी ने उस हेतु अपना दृढ़ निश्चय रखा। माताजी ने रवीन्द्र जी का माँ के प्रति मोह देख संघस्थ मोतीचंद जी को बुलाकर सारी बात बताई और बाजार से श्रीफल लाने को कहा। मोतीचंद जी ने यह सुनकर बहुत ही प्रसन्न हो श्रीफल लाकर माता मोहिनी के हाथ में दे दिया और मोहिनी देवी उसी समय माताजी के साथ सेठसाहब (सेठ भागचंद सोनी) की नशिया में आचार्यश्री के समक्ष श्रीफल लेकर बोलीं– महाराज जी! मैं आपके करकमलों से आर्यिका दीक्षा लेना चाहती हूँ और श्रीफल चढ़ा दिया। आचार्य श्री उस समय प्रसन्नमना हो ज्ञानमती माताजी की ओर देखने लगे। उपस्थित सभी साधुवर्ग उनके वैराग्य की सराहना करने लगे। तब आचार्यश्री ने कहा कि तुम्हारा शरीर बहुत कमजोर है और यह जैनी दीक्षा तलवार की धार है। तब मोहिनी माता ने सारपूर्ण उत्तर देते हुए कहा कि महाराज जी! संसार में रहकर भी तो कितने कष्ट सहन करने पड़ते हैं, दीक्षा में जो कष्ट होंगे, उन्हें सहन करने में मैं अपना सौभाग्य समझूंगी। फिर माताजी ने अजमेर के एक अति विश्वस्त श्रावक जीवनलाल जी को टिकैतनगर भेजकर यह समाचार पहुँचा दिया। इधर घर में समाचार पहुँचते ही सबको बहुत झटका लगा और सब विक्षिप्त हो रोने लगे पुनः येन-केन प्रकारेण मन को समझाकर शीघ्र ही उनके पुत्र-पुत्री, भाई आदि सब अजमेर पहुँच गए और सभी मोहिनी जी से चिपककर रोने लगे। सभी ने इनकी दीक्षा रोकने के बहुत प्रयत्न किए और बहुत उपद्रव भी किया। इन सभी प्रसंगों में मोहिनी जी निर्मोहिनी बन गईं और अपने निर्णय पर अडिग रहीं, अन्ततोगत्वा माता मोहिनी की दीक्षा का कार्यक्रम बहुत ही उल्लासपूर्ण वातावरण में सम्पन्न हुआ, जो कि अजमेर नगर के लिए ऐतिहासिक अवसर था। दीक्षा के दिन मोहिनी जी के सिर के बाल छोटे थे क्योंकि उन्होंने एक माह पूर्व ही अपने केश काटे थे अतः छोटे केशों का लुंचन करना बड़ा कठिन था। जब माताजी ने चुटकी से इनको केश निकालना शुरू किया तो सारा सिर लाल-लाल हो गया उस समय माता मोहिनी के पुत्र-पुत्री और कुटुम्बी ही क्या अनेक देखने वाले लोग भी खूब रोने लगे और मोहिनी के साहस एवं वैराग्य की प्रशंसा करने लगे। उस समय दीक्षा के अवसर पर अनेक साधुओं ने निर्णय लिया कि चूँकि माता मोहिनी साक्षात् रत्नों की खान हैं अतः इनका 'रत्नमती' यह सार्थक नाम रखना चाहिए, तब आचार्य श्री धर्मसागर महाराज ने इन्हें ''आर्यिका रत्नमती माताजी'' के नाम

से सम्बोधित किया।

आर्यिका श्री रत्नमती माताजी ने दीक्षा के पश्चात् पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी के संघ में रहते हुए 13 चातुर्मास किए और दीक्षा के पूर्व तो अनेक ग्रंथों के स्वाध्याय किए ही थे, दीक्षा के पश्चात् चारों अनुयोगों के ग्रंथों का अच्छी तरह स्वाध्याय किया। समय-समय पर, आगत यात्रियों, महिलाओं, बालिकाओं को धर्म का उपदेश देकर देवदर्शन, पूजन, रात्रि भोजन त्याग, स्वाध्याय आदि का वे उपदेश देती थीं और क्षेत्र पर आगत जैनेतर बंधुओं को मद्य, मांस, मधु त्याग की प्रेरणा देती रहती थीं। आर्यिका रत्नमती माताजी का स्वास्थ्य पित्त प्रकोप की बहुलता से युक्त था। इनका आहार अति अल्प था, मूंग की दाल के पानी में भीगी दो रोटी और लौकी का उबला साग वे लेती थीं तथा थोड़ी सी दूध की दलिया, थोड़ा सा दूध, अनार का रस और कभी-कभी थोड़ा सा फल, बस यही उनका आहार था। इनके इतने अधिक पथ्य को देखकर कभी-कभी वैद्य भी हैरान होकर कहते थे कि माताजी! श्रावक आहार में जो आपको देता है, सो यदि आपका त्याग न हो, तो ले लिया करें। मौसम में आने वाले फल तथा खिचड़ी, चावल भी ले लिया करें, किन्तु ये किसी की नहीं सुनती थीं। घर में भी यह अपनी सन्तानों को भी ऐसे ही पथ्य कराती रहती थीं, यही कारण है कि इनके पुत्र-पुत्रियों में खाने की जिह्वा लोलुपता नहीं दिखती है। आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी का प्रायः सब त्याग है, मात्र दो अन्न, दो रस और गिने-चुने फल और उसमें भी अक्सर उनका भी त्याग कर देती हैं, महीने में कई दिन नीरस भोजन करती हैं एवं अष्टमी-चतुर्दशी को तो उनका सदैव अन्न का त्याग रहता है।

आर्यिका श्री रत्नमती माताजी प्रातः 3 बजे उठकर महामंत्र का जाप्य करके अपररात्रि स्वाध्याय में तत्त्वार्थसूत्र का पाठ कर पुनः सहस्रनाम, भक्तामर, त्रिलोकवंदना, निर्वाणकाण्ड आदि स्तोत्रों का पाठ करती थीं। 7 से 8 बजे तक सामूहिक स्वाध्याय में बैठतीं, अनन्तर आहार के बाद सामायिक कर विश्राम करती थीं। पुनः 2 बजे से 4 बजे तक मनोयोगपूर्वक स्वाध्याय सुनती थीं, अनन्तर वृद्धावस्था के कारण कुछ क्षण शरीर की सेवा करवाकर दैवसिक प्रतिक्रमण करतीं पुनः सायंकाल भगवान के दर्शन कर सामायिक करती थीं। रात्रि में सर्दी के दिनों में तो पूर्वरात्रिक स्वाध्याय में छहढाला का पाठ सुनती थीं। इन्हें छहढाला से विशेष प्रेम था, यदि किसी कारणवश यह छहढ़ाला न सुन सकें, तो उन्हें लगता कि मैंने कुछ सुना ही नहीं है। इस प्रकार यह अपनी आगम चर्या

का पूर्णतः पालन करती थीं। यदि कदाचित् पित्त प्रकोप आदि से विशेष अस्वस्थ रहती थीं, तो संघस्थ आर्यिकाएँ उन क्रियाओं को सुनाती थीं। इन्हें ऋषिमण्डल स्तोत्र और उसके मंत्र से भी विशेष प्रेम था। इनकी अस्वस्थता के कारण प्रायः संघ में चैत्यालय रहता था फिर भी मंदिर जाकर भगवान का दर्शन करके ही इन्हें संतोष होता था। पित्त प्रकोप होने से इनके शरीर के लिए उपवास हितकर नहीं था, फिर भी व्रतों का प्रेम और सल्लेखना विधि की भावना से पंचमेरु आदि व्रत उपवासपूर्वक किया करती थीं।

इनकी सबसे बड़ी विशेषता थी – इनकी निरभिमानता। ये कभी ज्ञानमती माताजी का नाम न लेकर उन्हें 'माताजी' कहकर सम्बोधित करती थीं। वास्तव में धन्य थीं उनके जीवन की वह घड़ियाँ, जब 15 जनवरी 1985 – माघ कृ. नवमी को उन्होंने पूज्य माताजी के चरण सानिध्य में हृदयस्पर्शी धार्मिक संबोधन प्राप्त कर सल्लेखना विधिपूर्वक जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में समाधिमरण किया। दिन में 1 बजकर 45 मिनट पर इस नश्वर शरीर से वह दिव्यआत्मा निकलकर देवलोक में जाकर विराजमान हो गई। यूँ तो एक जगतमाता के हमारे बीच से जाने पर एक अपूर्णीय क्षति हुई फिर भी मृत्यु से संघर्ष करना वीरता का परिचायक है और यह निश्चित है कि शीघ्र ही उन्हें सिद्धगति की प्राप्ति होगी।

पूज्य आर्यिका श्री रत्नमती माताजी के जीवन में 13 का अंक विशेष शुभ रहा। 13 सन्तानों को जन्म देने वाली, दीक्षा लेकर 13 प्रकार के चारित्र का परिपालन कर 13 वर्ष तक दीक्षित जीवन में रहकर उन्होंने सदैव स्व-परकल्याण का भाव रखा।

वस्तुतः ऐसी तपःपूत रत्नों की खान, निरभिमानी, वात्सल्यमयी, अनमोल निधि की प्रदात्री माता रत्नमती जी शीघ्र ही सिद्धगति की प्राप्ति करें, उनके चरण कमलों में कोटिशः वंदन।

अनेकरत्नैरतिदीप्तिमद्भिः, यथा प्रसूतैः समलंकृतोर्वी।
अन्वर्थसंज्ञामनवद्यकीर्तिम्, तामार्यिकां रत्नमतीं नमामि।।

दहेज का चमत्कार : एक नाटिका

–आर्यिका चंदनामती

(प्रथम दृश्य)

उत्तरप्रदेश के सीतापुर जिले में ''महमूदाबाद'' नामक नगर है। वहाँ जैन समाज के एक श्रेष्ठी सुखपालदास जैन के घर में दो पुत्र और दो पुत्रियाँ हैं। उनमें से छोटी पुत्री मोहिनी के विवाह का दृश्य प्रस्तुत है–

(बारातियों की धूम मची है, शोरगुल चल रहा है, विदाई की बेला निकट है।)

मोहिनी–(रोती हुई माँ के गले से लिपट जाती है) माँ! मुझे आशीर्वाद दीजिए कि मैं ससुराल में आपकी शिक्षाओं का पालन कर सकूँ। मुझे जल्दी-जल्दी बुला लेना माँ, यह अपना घर छोड़कर मैं पराये घर में कैसे रह पाऊँगी माँ।

माता मत्तोदेवी–(रोते हुए बेटी को समझाती है) नहीं बेटी मोहिनी! तुम अपना मन इतना छोटा न करो। तुम जहाँ जा रही हो, टिकैतनगर के उस परिवार में सभी बहुत अच्छे लोग हैं, वे सब तुम्हें बहुत अच्छी तरह से रखेंगे। (सिर पर हाथ फेरते हुए) मेरी बच्ची पर मुझे पूरा भरोसा है कि ससुराल में जाते ही वहाँ अपने मधुर व्यवहार से सबका मन मोह लेगी। बेटी! तुम्हारा नाम ''मोहिनी'' है न, देखो मेरी ओर (बेटी का चेहरा अपने हाथों से ऊपर उठाकर) जैसा नाम-वैसा काम। ठीक है न, अब रोना नहीं है, वर्ना आंखें सूज जाएंगी और मेरी रानी सबको मुँह कैसे दिखाएगी।

(कृत्रिम हंसी के साथ पुत्री को अपने से अलग कर विदा करने लगती है)

मोहिनी–(पास में खड़े पिताजी के चरण स्पर्श करती है) पिताजी! आप मुझे बहुत प्यार करते थे न, फिर क्यों मुझे अपने से दूर भेज रहे हैं? अब आपको जल्दी-जल्दी मेरे पास आना पड़ेगा। आएंगे न? बोलो।

पिता सुखपालदास–(रुंधे कंठ से) हाँ बेटी! क्यों नहीं? अपनी लाडली के पास तो मैं बहुत जल्दी-जल्दी आया करूँगा। क्या करूँ पुत्री! यह मेरी नहीं, हर माता-पिता की मजबूरी होती है कि बेटी को पराये घर भेजना और पराये घर की बेटी लाकर पुत्रवधू के रूप में अपने घर की शोभा बढ़ाना।

भाई महिपालदास–हाँ जीजी! यही इस सृष्टि की प्राचीन परम्परा है।

बड़ी बहन रामदुलारी–मोहिनी! देखो, मुझे भी तो तुम सभी ने मिलकर

पराये घर भेजा था। अब मुझे वही ससुराल अपना घर लगता है और वहीं के सब लोग अपने माता-पिता, भाई-बहन के रूप में प्रिय लगते हैं। इसी तरह तुम भी थोड़े दिन में अपने घर में रम जाओगी।

मोहिनी–(आँसू पोंछती हुई) ठीक है, ठीक है। अब मैं आप सबसे विदा लेकर एक संस्कारित कन्या के रूप में ससुराल के प्रति अपने कर्तव्य को निभाऊँगी और हमेशा अपने पीहर का नाम ऊँचा रखूँगी।

(पति के साथ जाते-जाते पुनः एक बार माता-पिता की ओर देखकर मोहिनी भावुक होती हुई)

मोहिनी–पिताजी! माँ! मुझे और कोई शिक्षारूपी उपहार दीजिए ताकि मेरी भावी जिंदगी बिल्कुल धर्ममयी बने।

पिताजी–हाँ हाँ, अच्छी याद दिलाई बेटी! अरे महिपाल की माँ! लाओ न वह शास्त्र, वह तो मैं देना ही भूल गया था। जल्दी लाओ, यही तो अमूल्य उपहार है एक पिता द्वारा अपनी पुत्री के लिए।

(ग्रंथ देते हुए) ले बेटी! यह पद्मनंदिपंचविंशतिका ग्रंथ अपने घर में बड़े पुराने समय से पढ़ने की परम्परा रही है। इसका तुम भी रोज स्वाध्याय करना। बस, पुत्री! मेरा यही तेरे लिए अमूल्य उपहार है।

(बेटी के सिर पर हाथ फेरते हुए) जा बेटी! तू सदा सुहागिन रहे, सुखी रहे, यही मेरा आशीर्वाद है।

सूत्रधार–

मानव समाज की दुनिया में, अब ऐसी नई लहर आयी।
इस ग्रंथ को पढ़कर जीवन में, जिनधर्म की बगिया लहराई।।
इसका ही चमत्कार प्रियवर, मुझको अब तुम्हें बताना है।
बस ज्ञानमती पैदा करने को, तत्पर हुआ जमाना है।।

(द्वितीय दृश्य)

(इस प्रकार इधर महमूदाबाद से बारात विदा हो जाती है और अब टिकैतनगर में नई बहू के आगमन के उपलक्ष्य में खुशियाँ छाई हैं। बाजे बज रहे हैं, महिलाएँ मंगलाचार गा रही हैं।)

लाला धन्यकुमार का घर, बहू को मंदिर ले जाती महिलाएँ। मंदिर दर्शन करने के बाद घर आकर सभी नित्य क्रियाओं में निमग्न हो जाते हैं पुनः एक दिन मोहिनी को स्वाध्याय करते देखकर सासू माँ अपनी बेटियों से कहती हैं–

(मोहिनी को पद्मनंदिपंचविंशतिका शास्त्र का स्वाध्याय करते दिखावें।)

सासू माँ—देखो मुन्नी! मेरे घर में कैसी धर्मात्मा बहू आई है, इसने तो आते ही घर का वातावरण ही बदल दिया है।

मुन्नी—हाँ, माँ! धर्मात्मा तो बहुत दिख रही है किन्तु खाने-खेलने, सजने-संवरने के सुनहरे दिनों में भाभी के लिए इतना धर्मध्यान करना क्या उचित है? माँ! मुझे यह सब देखकर कुछ डर लगता है कि कहीं इस घर में कभी वैरागी बाजे न बजने लग जाएं।

सासू माँ—नहीं नहीं मुन्नी! ऐसी कोई बात नहीं है अरे! तुम इतनी आगे तक कहाँ सोचने लग गईं। (कुछ चिन्तन मुद्रा में) अच्छा देखो, मैं बहू से पूछती हूँ कि इस शास्त्र में गृहस्थ धर्म का वर्णन है या वैराग्य भावना का?

बहू ओ बहू! यह शास्त्र तुम्हें बहुत अच्छा लगता है। बताओ, इसमें क्या लिखा है?

मोहिनी—माँ जी! यह वही शास्त्र तो है जो मुझे विदाई के समय दहेज के रूप में मेरे बापू जी ने दिया था।

(हाथ जोड़कर विनम्रता से सासू के पास आकर) इस शास्त्र में गृहस्थों के लिए बड़ी अच्छी-अच्छी बातें लिखी हैं।

सासू माँ—मेरी प्यारी बहू! मुझे भी तो कुछ बताओं कि कौन सी अच्छी-अच्छी बातें हैं?

मोहिनी—(शास्त्र उठाकर पास में लाती है) देखिए माँ जी! इसमें लिखा है कि श्रावक-श्राविकाओं को घर में रहते हुए भी देवपूजा, गुरुपास्ति, स्वाध्याय, संयम, तप और दान इन छह कर्तव्यों का पालन करना चाहिए। इससे वे भी मोक्षमार्गी माने जाते हैं।

सासू माँ—किन्तु मेरी फूल जैसी बहू को अभी से पूजा, संयम, तप इन सबको जानने की क्या जरूरत है। बेटी! तुम तो अभी मेरे लड़के को खूब खुश रखो। गृहस्थ नारी के लिए अपना पति ही परमेश्वर होता है और उसकी सेवा ही परमात्मा की पूजा समझना चाहिए। समझीं बहू! हाँ, दर्शन तो तुम रोज करती ही हो, दान भी जो इच्छा हो कर लिया करो, लेकिन संयम-तप की बात अभी बिल्कुल मत किया करो।

मोहिनी—(सासू माँ के पैर पकड़कर) माँ जी! मैं कहाँ दीक्षा लिये ले रही हूँ। लेकिन घर में रहकर भी भोगों की तृष्णा थोड़ी कम की जाए तो भी संयम

का पालन हो जाता है और पुण्य का बंध होता है।

सासू माँ—मैं समझी नहीं, मेरी बहू क्या कह रही है?

मोहिनी—नहीं माँ जी! कुछ नहीं, बस मैं यही कह रही थी कि अष्टमी-चौदश, अष्टान्हिका-दशलक्षण आदि पर्वों में गृहस्थ भी संयम का पालन करके पाप कर्मों को नष्ट कर सकते हैं।

सासू माँ—अच्छा-अच्छा बस, चलो बहू! शास्त्र बंद करो और मेरे लिए नाश्ता लगाओ, सुनो! तुम भी मेरे साथ बैठकर नाश्ता किया करो। देखो बेटा! शास्त्र तो रोज चार-चार लाइन पढ़ा जाता है, बस यही स्वाध्याय है। (मोहिनी उठकर काम मे लग जाती है और देखते-देखते दिन, महीने, वर्ष निकल जाते हैं। फिर एक दिन गर्भवती मोहिनी प्रसव वेदना से कराहने लगती है। कुछ ही देर में समाचार ज्ञात होता है कि प्रथम पुष्प के रूप में कुलवधू ने कन्यारत्न को जन्म दिया है। अन्दर से धाय की आवाज आती है।

धाय—देखो, देखो मालकिन, अरे देखो तो सही! यहाँ प्रसूतिगृह में कैसा उजाला छा गया है। ऐसा तो नहीं कि तुम्हारे घर में कोई देवी का अवतार हुआ हो? लेकिन यह क्या, यह बिटिया तो रो ही नहीं रही है।

सासू माँ—हे भगवान्! मेरी बहू का पहला फूल है, कुम्हलाने न पाए। प्रभो! इसकी रक्षा करना। (इस प्रकार सभी की मंगल कामना और खुशियों के साथ कन्या का जन्म उस घर के लिए वरदान बन गया। धीरे-धीरे बालिका सबकी गोद का खिलौना बन गई। उसका नाम पड़ा-मैना।

धीरे-धीरे मैना बड़ी होने लगी और 7-8 साल की होते-होते उसमें ज्ञान की किरणें प्रस्फुटित होने लगीं, उस पर माँ मोहिनी ने उसे और भी ज्यादा संस्कारित होने का मौका दे दिया। होता क्या है एक दिन-

मैना—(यहाँ 7 साल की बालिका को फ्राक पहने हुए दिखावें) माँ! मैं सहेलियों के साथ बाहर खेलने जा रही हूँ।

माँ—अरी मैना! कहाँ जाओगी खेलने, क्या रखा है खेल-वेल में। मुझे यह शास्त्र पढ़कर सुनाओ। देखो! इसमें कितनी अच्छी-अच्छी बातें लिखी हैं।

मैना—(माँ के पास बैठकर शास्त्र पढ़ती है) सती मनोवती ने क्वाँरी अवस्था में ही गजमोती चढ़ाकर भगवान के दर्शन करने की प्रतिज्ञा ले ली। पुनः विवाह के बाद अनेकों संकट आने के बाद भी वह अपने नियम में अडिग रही, तो देवता भी उसके सामने नतमस्तक हो गये और उसकी प्रतिज्ञा पूरी

करने के लिए जंगल में भी एक तलघर के अंदर मंदिर प्रगट हो गया एवं चढ़ाने हेतु गजमोती भी रख दिए।

(इतना पढ़कर कहती है) ओ हो! कितनी रोमांचक कहानी है। मेरी प्यारी माँ! ऐसी सुन्दर कहानियाँ तो मुझे रोज पढ़ने को दिया करो।

माँ—ठीक है बिटिया! ऐसी कहानी पढ़ने में जो आनंद मिलता है वह भला खेल में मिलेगा क्या।

चलो, अब मेरे साथ थोड़ा रसोई का काम करो, जिससे तुम बहुत जल्दी एक होशियार लड़की बन जाओगी। (मैना माँ के साथ काम में लग जाती है किन्तु काम करते-करते भी वह पुस्तक खोलकर आलोचना पाठ, विनती आदि याद करने लगती है)

मैना—(याद करती हुई गुनगुनाती है) द्रौपदि को चीर बढ़ाया, सीता प्रति कमल रचाया। अंजन सों कियो अकामी, दुख मेटो अन्तर्यामी।। (माँ से कहती है) माँ! देखो मैंने यह आलोचना पाठ पूरा याद कर लिया है।

माँ—(बेटी के सिर पर हाथ फेरती है) मैना! तुम इतनी छोटी होकर भी बहुत होशियार हो गई हो। अरे! मेरी गुड़िया को किसी की नजर न लग जाए। बिटिया! अब मैं तुम्हें वह शास्त्र भी दिखाऊँगी जिसे तुम्हारे नाना जी ने मुझे दहेज में दिया था। उसका नाम है-पद्मनंदिपंचविंशतिका। अर्थात् आचार्य श्री पद्मनंदि ने इसे लिखा है, इसमें पच्चीस अध्याय हैं जो एक से एक अच्छे हैं।

मैना—मुझे जल्दी दिखाओ वह शास्त्र। नानाजी की धरोहर, मैं उसका एक-एक शब्द पढ़ूंगी और उसे याद भी कर लूँगी। ठीक है न माँ। (जाकर माँ के गले से लग जाती है। माँ अपनी उस देवी सी पुत्री को कलेजे से लगाकर असीम सुख का अनुभव करने लगती है। अगले दिन पुनः)—

माँ—बिटिया मैना! लो पहले दूध पियो (गिलास देती हुई) फिर मैं रसोई में खाना बनाने जा रही हूँ। तुम अपने छोटे भाई-बहनों को संभाल लेना। कैलाश को तैयार करके स्कूल भेज देना, श्रीमती-मनोवती और प्रकाश-सुभाष को नहला-धुलाकर मंदिर भेज दो,फिर सबको नाश्ता करवाकर नौकर के साथ बाहर खेलने भेज देना।

मैना—ठीक है माँ! मैं अब आपके हर काम में सहयोग करूँगी। बड़ी हो गई हूँ ना, इसलिए दादी-बाबा का भी ध्यान रखूँगी। आप अकेली सब काम करती-करती थक जाती हो ना। (बच्चों को जल्दी-जल्दी तैयार करके स्कूल और मंदिर

भेजती है पुनः दादी से कहती है)

दादी जी! आप नाश्ता कर लीजिए, माँ ने यह नाश्ता आपके लिए भेजा है।

दादी माँ—जुग जुग जिये मेरी पोती रानी, मैं तो निहाल हो गई हूँ। ऐसी सुन्दर और सुयोग्य पोती पाकर। (फिर वे मैना के सिर पर हाथ फिराती है) भगवान्! इसे अच्छी सी ससुराल दे, खूब सुखी रहे मेरी लाडली। (मैना के बाबा से कहने लगती हैं) अजी! सुनो तो सही, देखो! अपनी मैना अब मेरी कितनी सेवा करने लगी है। इस भोली सी बच्ची को तुम पैसे-वैसे तो दिया करो, यह तो बेचारी कभी कुछ मांगती ही नहीं है।

बाबाजी—आ जा बेटी मेरे पास। यह तो मेरी सबसे दुलारी पोती है। (मैना बाबा के पास चली जाती है) अरे मैना की दादी! तुम इसे पैसे देने की बात करती हो, मेरा सब कुछ तो इसी का है। मेरा बेटा छोटेलाल देखो कितना होशियार है। उससे कहकर मैं इसकी खूब अच्छी शादी कराऊँगा, फिर तो मेरी बच्ची दूधों नहायेगी। (मैना के सिर पर हाथ फेरते हैं, मैना शर्माई सी सिर नीचा करके माँ के पास चली जाती है)

मैना—माँ!माँ! दादी-बाबा तो बस सीधे मेरी शादी के ही सपने संजोने लगे। क्या एक बेटी की यही नियति होती है कि उसे पाल-पोस कर शादी करके ससुराल भेज दिया जाए। बस, इससे ज्यादा यहाँ मेरी कोई अहमियत नहीं है। ये शादी-वादी की बात मुझे बिल्कुल अच्छी नहीं लगती है।

माँ—नहीं बेटी! ऐसी बात नहीं है। तुम सबकी बहुत लाडली बेटी हो ना, इसीलिए सब तुम्हारे भविष्य की चिंता करते हैं। लेकिन अभी मेरी बच्ची की उमर ही क्या है। अच्छा जाओ मैना! तुम थोड़ी देर सहेलियों के साथ कोई खेल खेल आओ, मूड बदल जाएगा।

मैना—नहीं, मुझे खेलने नहीं जाना है। आज तो मैं वो आपका वाला शास्त्र पढ़ूंगी उसी से मन बदल जाएगा। (शास्त्र उठाकर बड़ी विनय से चौकी पर रखती है, पास में माँ और दादी दोनों बैठकर सुनने लगती हैं)

दादी—बिटिया! सुनाओ, आज तुमरे मुंह से हमहू शास्तर सुने खातिर बइठी हन। जानत हौ, ई शास्तर तुमरी महतारी का तुमरे नाना दिहिन हैं। ईका का नाम है? जरा बताव।

मैना—दादी! इस शास्त्र का नाम है—पद्मनंदिपंचविंशतिका। (ॐकांर बिंदु संयुक्तं की दो लाइनें पढ़कर शास्त्र पढ़ती है) अब आप लोग ध्यानपूर्वक इसको

सुनिये-देखो! इसमें लिखा है कि 'संसार की चारों गतियों में मनुष्य गति सबसे अच्छी गति है, क्योंकि मनुष्य के अन्दर विवेक होता है और मोक्ष जाने के लिए प्रबल पुरुषार्थ कर सकता है। अनादिकाल से यह जीव संसार में मिथ्यात्व और अज्ञान के कारण चौरासी लाख योनियों में घूम रहा है। (मैना आगे कहती है)-

समझी माँ! संसार में मिथ्यात्व और अज्ञान सबसे ज्यादा खराब होता है। देखो! आगे क्या लिखा है? ''इन्द्रत्वं च निगोदतां च बहुधा मध्ये तथा योनयः''.....ओ हो! कितनी सुन्दर बात आचार्यदेव लिख रहे हैं कि ''हे आत्मन्! तूने संसार में न जाने कितनी बार स्वर्गों में इन्द्र का पद पाया, कितनी ही बार एकेन्द्रिय की निगोद पर्याय पाई, जहाँ किसी के द्वारा कभी संबोधन भी नहीं मिल सकता है तथा तरह-तरह के पशु-पक्षी, नारकी आदि जन्मों को धारण कर दुःख उठाये हैं.....। (कुछ चिंतन मुद्रा में कहती है)–

देखो तो माँ! इस अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य जनम को पाकर भी केवल विषय-भोगों में प्राणी रम जाता है और अपने अंदर छिपी भगवान् आत्मा को पाने का कोई पुरुषार्थ ही नहीं हो पाता है।

दादी–(मोहिनी से) अरी बहू! ई लड़की का तुम यू सब का पढ़ाय रही हौ। ई वैराग की बात पढ़-पढ़के, कहूँ हमरी मैना घर से उड़ ना जाय। हमका तो बड़ी चिंता है। अब शास्तर इससे न पढवाव, नाही तो वैराग ईके सिर चढके बोले लगिहै।

मोहिनी–ठीक है माँ जी! अब हम खुद शास्त्र पढ़ा करेंगे, इससे नहीं पढ़ायेंगे। (कुछ सोचकर) लेकिन माँ जी! इस लड़की में तो स्वयं ही न जाने कहाँ से ज्ञान भर गया है, इसने तो मुझे समझा-समझाकर कई मिथ्यात्व क्रियाओं का त्याग करा दिया है। अब मुझे भी समझ में आ गया है कि पुरानी परम्परा से चली आईं कुरीतियाँ हैं उन्हें छोड़कर केवल भगवान की भक्ति में ही दृढ़ श्रद्धान करना चाहिए। ठीक है न माँ जी?

दादी माँ–अरे वाह! ईं तो महतारी खुदै बिटिया का धरम पढ़ाय-पढ़ाय चापर किये हैं। ऊका अपनी गुरु बनयिहौ बहू, फिर तो यू समझौ गई हाथ से। जहाँ ब्याहके जइहै, हुआं यही मेल राग फैलइहै। अरे भगवान्! हमका तो ई लड़की की बड़ी चिन्ता है। सुनौ, मैना के बाबा! ओ बेटा छोटेलाल! ईके खातिर बड़ा धर्मात्मा घर देखेव, नाई तो या जहाँ जइहै रोज लड़ाई होइहै सास-नन्द से। (हांफती हुई दादी अंदर जाने लगती हैं) रक्षा करौ रक्षा करौ भगवान्! हमरी पोती

की बुद्धी ठीक कर देव।

छोटे लाल–(माँ को रोककर) अरे अम्मा! तुम चिंता न करो। मैना अभी छोटी है, थोड़ी बड़ी हो जाएगी तो सारा लोक व्यवहार समझ जाएगी।

बाबाजी–हाँ हाँ! मैना की दादी! तुम बेकार घबड़ात हौ, अपनी मैना तो बड़ी अच्छी लड़की है। वा ससुराल जायके तुमरी बदनामी न होय देहै। बस थोड़ी धर्मात्मा ही तो है तो हम लोग अपने नगर के आसैपास मा कोई धर्मात्मा परिवार देख लेबै। ईका बड़ी तो होय देव, सब चिंता दूर अपने आप होइ जइहै।

छोटेलाल–अरे पिताजी! सभी संतान अपना-अपना भाग्य लेकर ही जनमते हैं। इसके भाग्य में जैसा वर लिखा होगा, वही तो मिलेगा। हम लोग तो केवल निमित्त मात्र बनकर इनका लालन-पालन करते हैं और फिर यह लड़की तो हमारे लिए पुत्री नहीं पुत्र के समान है। अम्मा! जानती हो, हमारे व्यापार में भी इससे पूरा सहयोग मिलता है, मेरे कमाए हुए नोटों को, पैसों को यही तो संभालकर रखती है, फिर मुझे सबकी अलग-अलग गड्डियाँ लगाकर देती है।

दादी–अच्छा भैय्या! अब समझ मा आवा कि या बिटेवा तुमरी तिजोड़ी संभाले है। फिर तो हमका कौनो चिन्ता नाई है ।

(इस प्रकार आपसी वार्ता में विषय यहीं समाप्त हो जाता है)

सूत्रधार–अरे भैय्या! मेरी बहना! सब सुन रहे हो न ध्यान से, उस मैना की कहानी, जिन्होंने अपने विलक्षण कार्यकलापों से ज्ञानमती नाम को प्राप्त किया है। अर्थात् साधारण कन्याओं की तरह से इनका बचपन नहीं बीता, बल्कि बचपन से ही इन्होंने अपने क्षण-क्षण का सदुपयोग किया था। तभी तो इनके लिए लिखा गया है–

जब बाल्यकाल देखा सबने, मैना का बड़ा निराला है।
उस नगरी में इस बाला सा, कोई ना प्रतिभा वाला है।।
प्रारंभिक बेसिक शिक्षा पर, थी ऐसी कड़ी नजर डाली।
कुल आठ बरस में मैना ने, यह शिक्षा पूरी कर डाली।।1।।

था आगे और नहीं साधन, पर साध न पूरी हो पाई।
फिर गई जैन शाला पढ़ने, मच गई वहाँ हलचल भाई।।
मैना इस तरह वहाँ जाकर, मेधा को और निखार चली।
जो आगे पढ़ने वाली थी, हर बाला इनसे हार चली।।2।।

उस शाला में इस बाला का,पढ़ने का अलग तरीका था।
तोता-मैना की तरह न इस, मैना ने रटना सीखा था।।
जो उसको सबक मिला करता, आचरणों से कर दिखलाय।
अर्जुन सम एक लक्ष्य सिद्धी, करने का मानो युग आया।।3।।

''इस तरह एक शास्त्र को दहेज में भेंट करने के कारण माता मोहिनी देवी के संस्कार अत्यधिक धार्मिक बने। तदुपरांत उनकी बेटी मैना के मन में भी बचपन से ही धार्मिक एवं संसार की असारता के भाव जन्म लेने लगे। उस कन्या ने 18 वर्ष की लघुवय में गृहत्याग कर आगे आर्यिका दीक्षा धारण की, जो आज जैन समाज की सर्वोच्च परम विदुषी साध्वी परमपूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के रूप में हम सबके सामने विद्यमान हैं। यही नहीं, माता के धार्मिक संस्कारों के कारण ही मैना की अन्य दो बहनों कु. मनोवती एवं मैं (कु. माधुरी) तथा एक लघु भ्राता रवीन्द्र कुमार ने भी आगे चलकर मोक्ष का मार्ग अपनाया, जो आज आर्यिका श्री अभयमती माताजी, आर्यिका चंदनामती माताजी एवं कर्मयोगी ब्र.रवीन्द्र कुमार जैन के नाम से जाने जाते हैं।''

बंधुओं! इस नाटिका के माध्यम से यही प्रेरणा प्राप्त करना है कि हमें भी अपने बेटी के विवाह में दहेज स्वरूप एक धार्मिक ग्रंथ अवश्य भेंट करना है, जिससे कि बेटी के परिवार की वंश परम्परा में धार्मिक संस्कारों का बीजारोपण होता रहे।

पूज्य आर्यिका श्री रत्नमती माताजी की पूजन

रचयित्री-बाल ब्र.कु. माधुरी शास्त्री[1]

-शंभु छंद-

सम्यग्दर्शन और ज्ञान चरित की जहाँ एकता होती है।
कलियुग में भी वहाँ मुक्ति पथ की सहजरूपता होती है।।
माँ रत्नमती जी का जीवन है इसी त्रिवेणी का संगम।
मैं भी स्नान करूँ उसमें इस हेतु कर रहा आराधन।।

ॐ ह्रीं आर्यिकाश्रीरत्नमतीमातः! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं आर्यिकाश्रीरत्नमतीमातः! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं आर्यिकाश्रीरत्नमतीमातः! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

-नरेन्द्र छंद-

मलिन आत्मा को शान्ती के शीतलजल से धोऊँ।
स्वाभाविक गुण में रम करके शाँत स्वभावी होऊँ।।
माता रत्नमती जी की मैं शाँत छवी को ध्याऊँ।
मिथ्या कल्मष धो करके समकित निधि को पा जाऊँ।।1।।

ॐ ह्रीं आर्यिकाश्रीरत्नमतीमात्रे जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

यह असार संसार न इसमें शांति कभी मिल सकती।
भव आतप मिट जावे जिससे तप में ही वह शक्ती।।
माता रत्नमती जी की मैं शाँत छवी को ध्याऊँ।
मिथ्या कल्मष धो करके समकित निधि को पा जाऊँ।।2।।

ॐ ह्रीं आर्यिकाश्रीरत्नमतीमात्रे संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

नश्वर जग का सुख वैभव नश्वर धन कंचन काया।
अविनश्वर बस एक मात्र मुक्ती सुख मुझको भाया।।
माता रत्नमती जी की मैं शाँत छवी को ध्याऊँ।
मिथ्या कल्मष धो करके समकित निधि को पा जाऊँ।।3।।

ॐ ह्रीं आर्यिकाश्रीरत्नमतीमात्रे अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

---

१. वर्तमान आर्यिका चन्दनामती माताजी।

मोह अग्नि में जल कर मानव कैसा झुलस रहा है।
काम मोह की उपशान्ती में समकित बरस रहा है।।
माता रत्नमती जी की मैं शाँत छवी को ध्याऊँ।
मिथ्या कल्मष धो करके समकित निधि को पा जाऊँ।।4।।

ॐ ह्रीं आर्यिकाश्रीरत्नमतीमात्रे कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

एक नहीं दो नहीं अनन्ते भव नरकों में बिताये।
जहाँ न तिल भर अन्न मिला यह क्षुधा कहाँ से जाये।।
माता रत्नमती जी की मैं शाँत छवी को ध्याऊँ।
मिथ्या कल्मष धो करके समकित निधि को पा जाऊँ।।5।।

ॐ ह्रीं आर्यिकाश्रीरत्नमतीमात्रे क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीपक की टिमकारी भी कुछ बाह्य अंधेरा हरती।
ज्ञान रश्मि अन्तर के मोहित तप को भी हर सकती।।
माता रत्नमती जी की मैं शाँत छवी को ध्याऊँ।
मिथ्या कल्मष धो करके समकित निधि को पा जाऊँ।।6।।

ॐ ह्रीं आर्यिकाश्रीरत्नमतीमात्रे मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

आत्मा को जड़ कर्मों ने चिरकाल भ्रमण करवाया।
अष्टगंध की धूप धूपघट में खेने को आया।।
माता रत्नमती जी की मैं शाँत छवी को ध्याऊँ।
मिथ्या कल्मष धो करके समकित निधि को पा जाऊँ।।7।।

ॐ ह्रीं आर्यिकाश्रीरत्नमतीमात्रे अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

जाने कितने मिष्ट मधुर फल मैंने अब तक खाये।
फिर भी तृप्ति हुई क्या जग में काल अनन्त गमाये।।
माता रत्नमती जी की मैं शाँत छवी को ध्याऊँ।
मिथ्या कल्मष धो करके समकित निधि को पा जाऊँ।।8।।

ॐ ह्रीं आर्यिकाश्रीरत्नमतीमात्रे मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्ट द्रव्य की थाली लेकर इस आशा से आया।
ज्ञानामृत का पान करूँ मैं छूटे ममता माया।।

माता रत्नमती जी की मैं शाँत छवी को ध्याऊँ।
मिथ्या कल्मष धो करके समकित निधि को पा जाऊँ।।9।।

ॐ ह्रीं आर्यिकाश्रीरत्नमतीमात्रे अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

-दोहा-

आत्म शक्ति को प्रकट कर, लीना संयम धार।
यही एक अनमोल है, रत्न त्रिजग में सार।।

-शंभु छंद-

जै जै जैनी दीक्षा जग में,
मुक्ति पद कारण मानी है।
इसके बल पर नर-नारी ने,
निज की शक्ति पहचानी है।।
कुछ कारण पाकर जो प्राणी,
जग से विरक्त हो जाते हैं।
व्यवहार क्रियाओं में रत हो,
वे निश्चय में खो जाते हैं।।1।।

इस युग में मुनिपथ दर्शक इक,
आचार्य शांतिसागर जी हुए।
उनके तृतीय पट्टाधिपती,
आचार्य धर्मसागर जी हैं।।
बस इन्हीं गुरु के आश्रय से,
माँ मोहिनी का जीवन बदला।
लग गई विरागी धुन इनके,
दिल में जो घटना चक्र चला।।2।।

आ गई पुरानी बात याद,
जब मैना घर से निकली थी।
यह शर्त आज मंजूर हुई जो,
माँ के मुँह से निकली थी।।

मैना तुम इक दिन मुझको भी,
भवदधि से पार लगा देना।
दे रही साथ मैं आज तुम्हें,
निज सम मुझको भी बना लेना।।3।।

संवत् दो सहस्र अठाइस की,
मगसिर वदि तीज तिथि आई।
अजमेर महानगरी में तब,
दीक्षा की पुण्य तिथि आई।।
जहाँ राग और वैराग्य भाव,
का मिला अनोखा संगम था।
पत्थर दिल पिघल गये लेकिन,
माँ मोहिनी का निश्चय प्रण था।।4।।

माँ रत्नमती की अमर कथा,
जग को संदेश सुनाती है।
निज का उत्थान तभी होता,
जब मोह की मति भग जाती है।।
हे ज्ञानमति जी की जननी,
युग-युग तक तुम जयशील रहो।
निज जन्म सफल करने वाली,
मुझको भी भवोदधि तीर करो।।5।।

-दोहा-

जननी जग में जन रहीं, पर तुमसी न अनेक।
नमन 'माधुरी' है तुम्हें, मातृ भक्ति जहाँ लेश।।

ॐ ह्रीं आर्यिकाश्रीरत्नमतीमात्रे जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

।।इत्याशीर्वादः, पुष्पांजलिः।।

मातृभक्ति

रचयित्री-बाल ब्र.कु. माधुरी शास्त्री[1]

यह भारत आज नहीं युग से, नारी से रहा न खाली है।
नारी के ही कारण इसकी, गौरव गरिमा बलशाली है।।
जहाँ ब्राह्मी और सुन्दरी की, माता यशस्वती-सुनन्दा है।
वहाँ मोहिनी माता ने पाया, मैना सा पूनम चन्दा है।।1।।

संतान मात की गोदी में, पलकर शैशव को प्राप्त करे।
विधि का विधान देखो यह भी, माता खुद उन्हें प्रणाम करे।।
इन अजब निराली बातों का, साक्षात दर्श करवाती हूँ।
माँ रत्नमती जी का किंचित्, मैं जीवन चरित सुनाती हूँ।।2।।

तीर्थंकर अभिषव से पवित्र, साकेतपुरी इक नगरी है।
कण-कण पवित्र इस स्थल का, नहिं इस सम दूजी नगरी है।।
श्री भरतराज का एकछत्र, शासन फैला जब से जग में।
इस वसुन्धरा का भारत भू, यह नाम पड़ा तब से सच में।।3।।

षट्खंड वसुधा को जीत प्रभू ने, चक्रवर्ति पद प्राप्त किया।
पुनरपि भुजबलि श्री बाहुबली पर, चक्ररत्न को चला दिया।।
सब राज्य विभव को त्याग बाहुबलि, गिरि कैलाश पधारे थे।
तब भरत अयोध्यापति बनकर, कुण्ठित मन राज्य संभारे थे।।4।।

इस नगरि अयोध्या के मधि में, सीतापुर जिला निराला है।
महमूदाबाद ग्राम जहाँ पर, नभ से टूटा इक तारा है।।
भक्तों की भीड़ लगी रहती, मंदिर मेले रथयात्रा पर।
घंटे बाजों की ध्वनि प्रभु का, संदेश सुनाती है घर-घर।।5।।

मंदिर के ही निकटस्थ भवन, श्रेष्ठी सुखपाल रहा करते।
दाम्पत्य सुखों से पूर्ण तथा, श्रावक षट्कर्म सदा करते।।
द्वय पुत्र पुत्रिद्वय के संग में, परिवारिक आनंद बाँटा था।
निज के धार्मिक संस्कारों को, सब सन्तानों में डाला था।।6।।

---

१. वर्तमान आर्यिका चन्दनामती माताजी द्वारा सन् १९८० में लिखित।

राजदुलारी-मोहिनी इन दो, कन्या रत्नों को पाकर के।
पितुमात के हर्ष की वृद्धि हुई, इनका लालन-पालन करके।।
महिपालदास भगवानदास, इक महल के दो स्तंभ बने।
इनसे शोभित सुखपालदास, होते मन में संतुष्ट घने।।7।।

राजदुलारी ने बाल्य अवस्था से, तरुणावस्था को प्राप्त किया।
व्यवहारिक रीतिरिवाजों ने, माता से उसको पृथक् किया।।
वह सास-ससुर के घर पहुँची, तब नवजीवन प्रारंभ किया।
वैवाहिक प्रथा पुरानी है, उसको इनने आरंभ किया।।8।।

मोहिनी सभी को मोह रही, दोनों भाई संग खेल रही।
सब लाड़प्यार में पली मोहिनी, माँ के मन को मोह रही।।
पर कोई पुत्री माता के संग, कितने दिन रह सकती है।
पुत्री पर का धन है निश्चित, वह तो पर की ही शक्ति है।।9।।

मोहिनी किशोरा को लख कर, माँ-बाप सोचते हैं मन में।
इस योग्य गुणों वाला वर हो, जिससे जोड़ी वरदान बने।।
वर की तलाश तो दूर रही, वर पक्ष तरफ से माँग हुई।
सुन्दर सुयोग्य वर को लखकर, मन की सब पूरी आश हुई।।10।।

बाराबंकी है जिला जहाँ, इक ग्राम टिकैतनगर शोभे।
जिनमंदिर के ही निकटस्थ भवन में, धनकुमार श्रेष्ठी रहते।।
सब पुत्र-पुत्रियों के संग में, आनन्द मग्न हो रमण करें।
इन सबमें छोटेलाल पुत्र के, संग मोहिनि संबंध करें।।11।।

यह बात जची सबके दिल में, बस शीघ्र कार्य प्रारंभ हुआ।
वर-वधू की राशि मिला करके, शुभ लग्न में यह संबंध हुआ।।
मोहिनी उस घर को छोड़ चली, जिसको निज मान रही अब तक।
बेटी जब तक अविवाहित है, घर से संबंध रहे तब तक।।12।।

फिर तो पति के ही चरणों में, उसका जीवन न्यौछावर है।
पति के ही घर को अपना कर, उसमें निज पर का भान करे।।
यह है रिश्ता नाता जग का, कब से चलता ही आया है।
इस बिन संसार और मुक्ति का, मार्ग नहीं बन पाया है।।13।।

दो वर्ष अनंतर मोहिनि ने, इक कन्या रत्न प्रदान किया।
जो मैना से बन ज्ञानमती, सारे जग का कल्याण किया।।

जन-जन को ज्ञानदान देकर, निज सम्यग्ज्ञान प्रचार करें।
जिनकी वाणी रस अमृत से, नर निर्झर अमृत प्राप्त करें।।14।।

मैना के दीक्षित जीवन से, इनके मन में वैराग्य हुआ।
सामान्य संयमित जीवन कर, दो प्रतिमा के व्रत ग्रहण किया।।
निज व्रत को पालन करके भी, पति आज्ञा में अग्रणी रहीं।
कर्तव्यपरायण हो करके, सब पुत्रपुत्रि को पाल रहीं।।15।।

कुछ काल अनंतर ही इनके, घर में इक घटना-चक्र घटा।
इक पुत्री मनोवती ने भी, मैना के पथ पर कदम रखा।।
सब भाई-बंधु और मातपिता, समझा-समझा कर हार गए।
उस अडिग प्रतिज्ञा के समक्ष, सबने ही मस्तक झुका दिए।।16।।

माता मोहिनी के ऊपर यह, क्या वज्राघात प्रहार हुआ।
वे समझ नहीं पा रहीं कि यह, किस कालचक्र का वार हुआ।।
कुछ क्षण विचार करतीं वे भी, संसार पंक से निकलूँ मैं।
पर पुनः नारिजीवन के कर्तव्यों, का ध्यान करें मन में।।17।।

वह मनोवती बन अभयमती, जग अभयदान का पात्र बना।
गुरु ज्ञानमती से ज्ञान ग्रहण कर, जीवन का कल्याण किया।।
मोहिनि गृहस्थ में रहकर के, षट्कर्मों का पालन करतीं।
नित धर्मनीति से चार पुत्र, नव पुत्रियों का लालन करतीं।।18।।

ज्यों समय बीतता जाता है, पितुमात सभी घबड़ाते हैं।
कोई पुत्र या पुत्री न जाए चला, बस यही भावना भाते हैं।।
पर क्या कोई नर है जग में, विधि का विधान जो टाल सके।
अनहोनी भी होके रहती, नहिं होनहार कोई टाल सके।।19।।

जैसे तैसे कर सहन किया, तब पिता ने इन आघातों को।
पच्चीस दिसंबर सन् उनहत्तर, चले स्वर्ग तज प्राणों को।।
सब नरनारी के बीच समाधी-मरण हुआ बहुशांती से।
जिनमुनि का आशीर्वाद मिला, नवकार मंत्र पढ़ते-पढ़ते।।20।।

उस दिन से माँ के जीवन में, 'माधुरी' आ गया परिवर्तन।
इस जग में अपना कौन बचा, जिसमें करती मैं अपनापन।।
पर पुत्रों की विक्षिप्त दशा को, देख हृदय कुछ द्रवित हुआ।
कुछ दिन गृह आश्रम में रह, कामिनी पुत्रि का ब्याह किया।।21।।

माधुरी और त्रिशला इन दो, पुत्री का और सहारा था।
अविवाहित बेटा था रविन्द्र, जो एक मात्र गृहतारा था।।
भादों दशलक्षण महापर्व, जो एक वर्ष में आता है।
अजमेर महानगरी में नर-नारी का लग रहा तांता है।।22।।

आचार्य धर्मसागर जी का, चउविध संघ वहाँ विराज रहा।
श्री ज्ञानमती माताजी के, उपदेशामृत का ठाठ वहाँ।।
कैलाशपुत्र निज परिकर सह, माँ को संग लेकर निकल पड़े।
मुनिसंघ दर्श के इच्छुक हो, आहारदान के भाव लिये।।23।।

दश दिवस वहाँ पर रह करके, चउविध दानों का लाभ लिया।
संघ साधू की परिचर्या कर, उपदेशामृत का पान किया।।
इक दिन कैलाशचन्द्र बोले, माँ अब घर को चलना चहिए।
गृहकाज और व्यापार सभी की, देखभाल करना चहिए।।24।।

माँ बोलीं तुम सब घर जाओ, थोड़े दिन मुझको रहने दो।
इन सबकी त्याग-तपस्या से, मुझको भी शिक्षा लेने दो।।
घबड़ाओ मत बेटा मैं तो, कुछ ही दिन में घर आऊँगी।
मेरा शारीरिक स्वास्थ कहाँ, जो दीक्षा मैं ले पाऊँगी।।25।।

मैं तो केवल इक बाला की, प्रतिभा शक्ति को देखूँगी।
इस अल्प आयु में केशलोंच, कैसे करती यह देखूँगी।।
माँ की इन बातों को सुनकर, बेटे को कुछ तो धैर्य बंधा।
बोले, माँ मैं कुछ ही दिन में, छोटे भाई को भेजूँगा।।26।।

दोनों छोटी बहनों को ले, कैलाश चल दिए थे घर को।
लेकिन इक संशय बार-बार, होता रहता उनके मन को।।
माँ कभी न सोचे यह मन में, मेरा इस जग में कौन रहा।
मैं भी माताजी बन जाऊँ, यह सांसारिक संबंध रहा।।27।।

कुछ दिवस बीतते ही देखो, यह कैसा हुआ धमाका था।
माँ मोहिनी भी दीक्षा लेंगी, यह आया घर संदेशा था।।
इस समाचार को सुन करके, मानो सबको मूर्च्छा आई।
यह अनहोनी कैसे होगी, यह कैसी अशुभ घड़ी आई।।28।।

कैलाश-प्रकाश-सुभाष सभी, तत्क्षण ही घर से निकल पड़े।
माँ की दीक्षा रुकवाने को, आचार्यश्री के चरण पड़े।।

क्या ऐसी भी दीक्षा होती, जिसमें न किसी की सम्मति हो।
किसकी हस्ती है जो मेरी, माँ को दीक्षा दे सकती हो।।29।।

आचार्यश्री पड़ गए धर्मसंकट में सोच करें मन में।
इक ओर मोहिनी खड़ी सुदृढ़, हाथों में श्रीफल ले करके।।
चतुराहारों का त्याग किया, जब तक दीक्षा नहिं पाऊँगी।
सांसारिक संबंध पुत्र-बहू, मैं वापस घर नहिं जाऊँगी।।30।।

सब पुत्र-पुत्रियाँ बिलख रहीं, माँ तुमने क्या सोचा मन में।
पितु का साया तो उठ ही गया, माँ भी निर्मम हो गयी हमसे।।
कुछ दिन तो चलो रहो घर में, हम सबको धैर्य बंधाओ तुम।
माँ-बाप बिना असहाय बालकों, को कुछ तो समझाओ तुम।।31।।

बेटियाँ सभी रोतीं कहतीं, माँ पीहर कैसे जाएंगे।
माँ बिन क्या घर अच्छा लगता, अरमान सभी खो जाएंगे।।
दामाद सभी रो रहे खड़े, माँ ऐसा अभी न सोचो तुम।
छोटे भाई भगवानदास, रो रहे बहन कुछ बोलो तुम।।32।।

सब कुटुंबियों का रुदन देख, अजमेर भी विह्वल हो उठता।
जन-जन की आँखों में अश्रू, यह दृश्य परम कारुणिक रहा।।
इक बार सभी के होठों से, यह शब्द अवश्य निकल जाता।
ऐसी दीक्षा मत होने दो, इनको दे दो इनकी माता।।33।।

लेकिन मोहिनी प्रतिज्ञा का, पालन करके दिखलाएगी।
मोहिनी आज निर्मोहिनि बन, गृहपिंजड़े से उड़ जाएगी।।
माँ को देखा जब निराहार, तो सबका ही दिल कांप गया।
लाखों प्रयत्न करके हारे, तब माँ के चरण प्रणाम किया।।34।।

माँ जैसी मरजी हो कर लो, आहार चलो तुम ग्रहण करो।
हम निराहार नहिं देख सकें, तुम क्यों शरीर कमजोर करो।।
देखो सुभाष बेहोश पड़ा, इस पर तो थोड़ा तरस करो।
सब पुत्र-पुत्रियों को खुद ही, क्यों दुख सागर में मग्न करो।।35।।

लेकिन माँ जैसे पत्थर की, नहिं एक अश्रु है आँखों में।
वैरागिन बन दीक्षा लेऊँ, इक यही आश है बस मन में।।
मगशिर वदि तीज तभी आई, यह आशा पूरी करने को।
मोहिनी बन गईं ''रत्नमती'', तब मोक्षलक्ष्मी वरने को।।36।।

कर रहीं ज्ञानमती केशलोंच, अपने सम उन्हें बनाने को।
लाखों जन समुदायों के मधि, जैनी चर्या समझाने को।।
परिजन-पुरजन सब खड़े हुए, आँखों से अश्रू बहा रहे।
नहिं बोल सके लेकिन कुछ भी, बस मौन सम्मती दिला रहे।।37।।

आचार्यश्री ने सोच-समझकर, एक बार पूछा फिर से।
मोहिनी तुम्हें तो मोह नहीं, किसी पुत्र-मित्र संबंधी से।।
तब उठीं मोहिनी हिम्मत से, चउसंघ की साक्षी ले करके।
सब जीवों से कर क्षमाभाव, मन में समता धारण करके।।38।।

फिर निश्चल होकर बैठ गईं, गुरुवर मुझको दीक्षा दीजे।
श्रीवीतराग के चरणों में, हो मति ऐसी शिक्षा दीजे।।
आर्यिका व्रतों को धारण कर, स्त्रीलिंग से मुक्ती पाऊँ।
बनकर निर्ग्रंथ तपश्चर्या कर, निज में ही मैं रम जाऊँ।।39।।

मुनिसंघ ने भी विमर्श करके, तब ''रत्नमती'' यह नाम दिया।
रत्नों की खान कहाती हैं, यह रत्नप्रसूता मात महा।।
चल दिए कुटुंबी सभी दुखित, मन माँ का आशीर्वाद लिए।
अब मात बन गई जगतमात, यह कह सब गृह प्रस्थान किए।।40।।

माधुरी यह दिल में सोच रही, मैं ही अब क्यों घर में जाऊँ।
आजीवन ब्रह्मचर्य लेकर, माँ की छाया में रह जाऊँ।।
नहिं रोक सके कोई बंधू, उसकी भी अटल प्रतिज्ञा को।
सब मान रहे इसको कोई, भव-भव में करी तपस्या हो।।41।।

यह दृश्य देख करके रवीन्द्र भी, सोचे तत्त्वव्यवस्था को।
स्त्रीपुत्रादि नहीं कोई, संग जाते जीव अकेला हो।।
कुछ दिन घर जाकर भाई के, संग रह सबको संतुष्ट किया।
कुछ दिनों के ही पश्चात् धर्मसागराचार्य का दर्श किया।।42।।

श्रीफल ले करके हाथों में, जा गुरुवर चरण प्रणाम किया।
भवबंधन से मुक्ती हेतू, शुभ ब्रह्मचर्य व्रत प्राप्त किया।।
इस समाचार के मिलने पर, घर में भी हाहाकार हुआ।
भाई-भाभी सब रोते थे, मानो क्या वज्राघात हुआ।।43।।

यह दैव बड़ा निर्दयी बली, कैसा यह रंग दिखाता है।
छोटे-छोटे भाई बहनों को, हम सबसे छुड़वाता है।।

इस तरह सोचते सब भाई, सांसारिक भोग न रुचते हैं।
फिर भी गृहस्थ में रह करके, पूजा दानादिक करते हैं।।44।।

श्री ज्ञानमती माता सदृश ही, रत्नमती आर्यिका बनीं।
मातापुत्री संबंध नहीं, रह गया धर्मनीति समझीं।।
कुछ दिन आचार्य संघ रह करके, धर्मसाधना करती थीं।
गुरु का आशीर्वाद पा करके, निज को धन्य समझती थीं।।45।।

आर्यिकासंघ मंगल विहार, दिल्ली की ओर करा जब ही।
माँ रत्नमती भी इस ही संघ में, ज्ञानमती के संग रहीं।।
दिल्ली महानगरी इन्द्रप्रस्थ, कहलाती है इस भूतल पर।
पच्चीस सौवें निर्वाणोत्सव की, धूम मच रही इस थल पर।।46।।

दिल्ली वासी के भाग्य जगे, माँ ज्ञानमती दर्शन करके।
निर्वाणोत्सव के अवसर पर, ऐसी विदुषी को पा करके।।
फिर क्या था इस सुन्दर सुवर्ण, अवसर पर चार चाँद लगते।
भारत के कोने-कोने से, कितने ही संत तभी चमके।।47।।

श्री धर्मसागराचार्य देशभूषण आचार्य पधारे थे।
मुनि विद्यानंद माँ ज्ञानमती, ये साधूजगत सितारे थे।।
इन गुरुओं के दर्शन कर करके, रत्नमती पुलकित होतीं।
कुछ दिवस बाद माँ ज्ञानमती संग, हस्तिनागपुर चल देतीं।।48।।

जहाँ जम्बूद्वीप विशाल तीर्थ, हो रहा जगत में न्यारा है।
इसके मधि मेरु सुदर्शन गिरि, जिनवर अभिषव से प्यारा है।।
मेरू के सिद्ध जिनालय के, दर्शन-वंदन करती रहतीं।
शास्त्रिक पौराणिक बातों का, साक्षात् दर्श करती रहतीं।।49।।

ये रत्नमती माताजी के, जीवन की सब स्मृतियाँ हैं।
माँ ज्ञानमती और जम्बूद्वीप, सब इनकी ही तो कृतियाँ हैं।।
गर बाँस नहीं होते तो नहिं, बज सकती थी बांसुरी कभी।
जग उऋण नहीं हो सकता है, उपकारों से ''माधुरी'' कभी।।50।।

इस जग में सूरज और चंदा का, वास प्रकाश रहे जब तक।
माता की दिगदिगन्तव्यापी, चहुँ ओर कीर्ति फैले तब तक।।
माँ रत्नमती के चरणों में, सुमनांजलि अर्पित करती हूँ।
मेरा प्रयास यह और फले, सर्वस्व समर्पण करती हूँ।।51।।

श्री रत्नमतीमातुः स्तुतिः

रचयित्री-ब्र.कु. माधुरी शास्त्री

श्री धर्मसागरगुरोः प्रणिपत्य भक्त्या।
जग्राह त्वं शिवकरं व्रतमार्यिकायाः।।
अन्वर्थनाम किल ''रत्नमती'' दधासि।
त्वामार्यिकां प्रणिपतामि सदैव मूर्ध्ना।।1।।

स्वात्मैकतत्वनिरता विरताऽव्रतेभ्यः।
सम्यक्त्वबोधनिपुणा प्रवणा सुवृत्ते।।
स्तोत्रस्य पाठपठने श्रवणेऽनुरक्ता।
त्वामार्यिकां प्रणिपतामि सदैव मूर्ध्ना।।2।।

आवश्यकीं षट्क्रियां प्रतिपालयन्ती।
रत्नत्रयं भवहरं बहुमानयन्ती।।
स्वाध्यायचिंतनपरा खलु सावधाना।
त्वामार्यिकां प्रणिपतामि सदैव मूर्ध्ना।।3।।

मंत्रं सदा जपसि सौख्यकरं पवित्रं।
रोगापहं सकलदुःखहरं प्रसिद्धम्।।
धर्मामृतं पिबति पाययतीह भव्यान्।
त्वामार्यिकां प्रणिपतामि सदैव मूर्ध्ना।।4।।

ख्याता द्वयोरपि किलार्यिकयोः प्रसूस्त्वं।
त्वं सर्वलोकमहिता श्रमणी प्रसिद्धा।।
ते ''माधुरी'' गुणगणानपि संस्तुवेऽहम्।
त्वामार्यिकां प्रथित रत्नमतीं नमामि।।5।।

श्री रत्नमतीमातुः जीवनवृत्तम्

रचयित्री-ब्र.कु. माधुरी शास्त्री

भरतेऽस्मिन्नार्यावर्ते, मध्येऽयोध्यापुरी व्यभात्।
तत्प्रान्ते शोभते देशो, रम्यः सीतापुराह्वयः।।1।।

तत्र महमूदाबादे, नगरे धर्ममण्डिते।
श्रेष्ठी सुखपालनामा, तत्पत्नी फूलमती मता।।2।।

तयोः स्यात् मोहिनी पुत्री, धर्मध्यानपरायणा।
विद्याविनयसंपत्त्याऽलंकृता गुणभूषिता।।3।।

श्रेष्ठी धन्यकुमारोऽभूत् टिकैतनगराभिधे।
छोटेलालश्च तत्पुत्रो सत्संस्कारैः सुसंस्कृतः।।4।।

मोहिनी तस्य भार्याभूत्, शीलसम्यक्त्वमण्डिता।
स्वाध्यायजाप्यसंसक्ता, दानपूजादितत्परा।।5।।

त्रयोदशसंतानाः स्युस्तयोस्ते रत्नसदृशाः।
पिता रत्नाकरोऽतः स्यात् माता रत्नमती च वै।।6।।

ज्ञानमत्यार्यिकायाः याऽर्याभयमत्याश्च या प्रसूः।
स्वयं रत्नत्रयं धृत्वा श्रमणीपदमाश्रिता।।7।।

धर्मसागरसूरीणां, शिष्या संयतिकाभवत्।
रत्नमत्यार्यिका ख्याता, त्वां वंदे मातरं मुदा।।8।।

महाव्रतपवित्रांगा, पंचसमितिसंयुता।
पंचेन्द्रियवशीकर्त्री, षडावश्यक्रियान्विता।।9।।

लोचादिसप्तभिस्ते स्युश्चाष्टाविंशतिसंमिताः।
मूलगुणपालने सक्ता, शक्ता कर्मनिमूलने।।10।।

शांता दान्ता क्षमाशीला, कषायारिशमीकृता।
विषया दुर्जयास्त्यक्तास्त्वया स्वात्मैकचिंतया।।11।।

धर्मध्यानपरा नित्यं, स्वाध्यायनिरता च या।
रत्नमत्यार्यिका सेयं, रत्नत्रितयमण्डिता।।12।।

मिथ्यात्वमोहशत्रूणां जये तत्परता सदा।
दधाना व्रतशीलादीन् त्वां वंदे मातरं मुदा।।13।।

जंबूद्वीपरचनाया निर्माणे सहयोगिनी।
हस्तिनापुरीर्थेऽस्मिन् स्वात्मतत्त्वमचिंतयत्।।14।।

धर्मप्रभावनाकार्यमधुना सर्वतोमुखं।
देशे देशेऽद्भुतं स्यात् तज्ज्ञानज्योतिःप्रवर्तनात्।।15।।

दर्शं दर्शं प्रहृष्यन्ती विद्यापीठस्य बालकान्।
सूक्तिसुधां च वर्षन्ती, भव्यानां हितकांक्षिणी।।16।।

सत्साहित्यं समालोक्य सम्यग्ज्ञानाख्यपत्रिकां।
मुहुर्मुहुः प्रशंसन्ती ज्ञानमत्यार्यिकाश्रमम्।।17।।

आबाल्यात् शास्त्रस्वाध्यायात्, धर्मामृतमग्रहीत्।
संप्रति सत्समाधिं चाकांक्षन्ती स्वात्मसिद्धये।।18।।

हे रत्नमते! जननि! हे मातः यशस्विनि।
अंबिके! भोः नमस्तुभ्यं, कृत्वा बद्धांजलिं मुदा।।19।।

जगन्मान्या जगत्पूज्या, जगन्माता च विश्रुता।
तत्पदप्राप्तयेऽहं त्वां, प्रणमामि पुनः पुनः।।20।।

रत्नमत्यार्यिका माता, जीयात् वर्षशतं भुवि।
[1]माधुरीबालिकायाश्च, पूर्यात् सर्वं मनोरथम्।।21।।

१. वर्तमान आर्यिका चन्दनामती माताजी।

पूज्यार्यिका-'रत्नमती'-प्रशस्तिः

पूज्यार्यिकां रत्नमतीं नमामि

-डॉ. दामोदर शास्त्री, दिल्ली

-अनुष्टुप् छंद-

बाराबंकी-जनपदे, टिकैतनगराह्वयः।
सद्धार्मिकाणामावासः, ग्रामो भुवि विराजते।।1।।

इस पृथ्वी पर बाराबंकी जिले (उत्तरप्रदेश) में 'टिकैतनगर' नाम का एक ग्राम है, जहाँ सज्जन और धार्मिक व्यक्ति निवास करते हैं।

श्रीमान् श्रेष्ठिवरस्तत्र, छोटेलालः सुधार्मिकः।
सुखपालांगजां श्रेष्ठां मोहिनीं परिणीतवान्।।2।।

यहाँ श्रीमान् सेठ छोटेलाल जी रहते थे जो एक अच्छे धार्मिक व्यक्ति थे। उनका विवाह सेठ सुखपाल जी की श्रेष्ठ कन्या 'मोहिनी' से हुआ था।

-उपजाति छंद-

गृहस्थधर्मं जिनशासनोक्तं, सा 'मोहिनी' सन्ततमाचरन्ती।
मैनेतिनाम्नीं सुभगां सुकन्याम्, प्रसूतवत्याभिजन-प्रशस्ताम्।।3।।

जैन शासन में गृहस्थ-धर्म का निरूपण किया गया है, उसी प्रकार वह 'मोहिनी' देवी सदा धर्माचरण में लगी रहती थी। इस मोहिनी देवी से एक भाग्यवान् उत्तम कन्या का जन्म हुआ। इस कन्या का नाम 'मैना' रखा गया और इसकी सभी कुटुम्बीजनों में प्रशंसा होती थी।

-भुजङ्गप्रयात छंद-

शरत्पूर्णिमायां प्रजाता वरेण्या, शरच्चन्द्रिकावत् श्रिया वर्द्धमाना।
स्वबाल्यादियं स्वात्मकल्याणकामा, प्रशस्तान् बिभर्ति स्म वैराग्यभावान्।।4।।

इस उत्तम कन्या का जन्म शरदपूर्णिमा को हुआ था। शारदीय चन्द्र की चाँदनी की तरह धीरे-धीरे उसकी कान्ति बढ़ती रही। बचपन से ही इसमें प्रशस्त वैराग्यभाव दिखाई पड़ने लगे तथा आत्म-कल्याण की इच्छा जागृत होने लगी थी।

-शार्दूलविक्रीडित छंद-

गार्हस्थ्ये न रुचिस्तया प्रकटिता, संसार-वैराग्यतः,
आजन्म श्रयितुं मनोभिलषितं सद्ब्रह्मचर्यव्रतम्।

संकल्पे दृढ़तां समीक्ष्य सुकृती तस्या व्रताधारणे,
आचार्याग्रणि-देशभूषणमहाराजोऽप्यनुज्ञामदात्।।5।।

(बड़ी होने पर) संसार से विरक्ति प्रकट करते हुए इसने (विवाहादि) गृहस्थी के झंझटों में अपनी अरुचि प्रकट की। इसके मन में तो आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने की अभिलाषा थी। आचार्यों में अग्रणी व श्रेष्ठ पूज्य श्री देशभूषण जी महाराज ने व्रत धारण की इच्छुक इस मैना के संकल्प की दृढ़ता की अच्छी तरह परीक्षा की और इसके बाद आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत की आज्ञा दी।

-बसन्ततिलका छंद-

आचार्यरत्नचरणेषु च मासषट्कम्,
अस्या व्यतीतमनवद्यतयाऽऽदृतायाः।
तुष्टस्तदा गुरुजनः, कृपया च तेषाम्,
सा क्षुल्लिका-शुभपदे विधिदीक्षिताऽभूत्।।6।।

यह 'मैना' आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज के चरणों में 6 मास तक रही। इस दौरान इसके जीवन-आचरण में कहीं भी दोष दिखाई नहीं पड़ा। इसने लोगों का आदर-भाव भी अर्जित किया। गुरुवर्य जब पूरी तरह संतुष्ट हो चुके, तब उन्होंने कृपा कर 'मैना' को 'क्षुल्लिका' की दीक्षा प्रदान की।

चित्तं चलं निजकुटुम्बिजनाग्रहेण,
जातं कदापि न, मनोबलदार्ढ्यवत्याः।
एतत्समीक्ष्य गुरुणा समलंकृतेयम्,
अन्वर्थकेन शुभ-'वीरमती' तिनाम्ना।।7।।

कुटुम्ब-परिवार के लोग बार-बार समझाते रहे, आग्रह करते रहे, किन्तु वीर बाला 'मैना' का मनोबल हमेशा दृढ़ रहा और उसका मन कभी विचलित नहीं हुआ। इसलिए आचार्य गुरुवर्य ने इसका 'वीरमती' नाम रखा जो इनके स्वभाव के कारण सार्थक ही था।

कालक्रमेण समवाप्य गुरोरनुज्ञाम्,
श्रीवीरसागरमुनीन्द्रगणाधिपस्य ।
पादारविन्द-युगले शरणं गतेयम्,
व्याञ्जीत्-शुभं सविनयं मनसोऽभिलाषम्।।8।।

समय बीतता गया। इनके भावों को देखते हुए आचार्यश्री ने क्षुल्लिका

वीरमती जी को अपनी अनुज्ञा दे दी कि वह आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के शरण में जाकर आर्यिका की दीक्षा लें। तदनुसार पूज्य क्षुल्लिका वीरमती जी ने आचार्यश्री वीरसागर जी के चरणों की शरण में पहुँचकर अपने मन की इच्छा प्रकट की।

आचार्यवर्य! भवदीयशुभानुकम्पाम्,
याचे, यतोऽभिलषितं मम साधितं स्यात्।
श्रेष्ठार्यिकोचितमहाव्रत-पालनाय ।
मह्यं ददात्वनुमतिं भव-ताप-शान्त्यै।।9।।

हे आचार्यश्री! आप मुझ पर अपनी शुभ अनुकम्पा करें ताकि मेरी अभिलाषा की पूर्ति हो सके। मैं संसार-ताप से शान्ति चाहती हूँ, इसलिए आर्यिकोचित महाव्रत के पालन की अनुज्ञा प्रदान करें।

-उपजाति छंद-

श्रुत्वा तदाचार्यवरेण तस्यै, स्वाज्ञा प्रदत्ता विनयान्वितायै।
तथा च शास्त्रोक्तविधेः सतोषम्, प्रदत्तमस्यै पदमार्यिकायाः।।10।।

इस विनीत क्षुल्लिका जी की प्रार्थना सुनकर आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज ने अपनी आज्ञा दे दी और बड़ी प्रसन्नता से शास्त्रोक्त विधि से दीक्षा देकर इन्हें 'आर्यिका' का पद प्रदान किया।

ततोऽद्य यावत् सकलार्यिकासु, विज्ञान-चारित्रतपोभिरग्र्या।
विराजते 'ज्ञानमती' तिनाम्ना, समादरार्हा विदुषां समाजे।।11।।

'ज्ञानमती' नाम से प्रसिद्ध आर्यिका जी तब से आज तक वर्तमान सभी आर्यिकाओं में ज्ञान व संयमादि चारित्र के क्षेत्र में सदा आगे ही आगे बढ़ती रही हैं। इसके साथ-साथ विद्वानों के समाज में भी अत्यधिक आदर प्राप्त करती रही हैं।

-इन्द्रवज्रा छंद-

अध्यात्म-भूगोल-सुनीति-धर्म-न्यायादिनानाविषयेष्वनेकान्।
ग्रन्थान् विरच्य प्रथितास्ति लोके, संरक्षिका चार्ष-परम्परायाः।।12।।

अध्यात्म, भूगोल, नीति-सदाचार, धर्म, न्यायशास्त्र आदि अनेकों विषयों पर इन्होंने ग्रंथों की रचना की है। आर्ष परम्परा की संरक्षिका के रूप में संसार में ये प्रसिद्ध हो गई हैं।

-मन्दाक्रान्ता छंद-

जम्बूद्वीपप्रतिकृतिमियं हस्तिनापुर्यदोषाम्,
शास्त्रप्रोक्तां परमसुभगां स्थापितुं दत्तचित्ता।
ज्ञानज्योतिर्विचरणमभूत् ख्यापयत्तन्महत्त्वम्।
एतत्सर्वं जनयति मुदं धार्मिकाणां समाजे।।13।।

जैन शास्त्रों में 'जम्बूद्वीप' का स्वरूप जिस प्रकार बताया गया है, उसी प्रकार जम्बूद्वीप का निर्दोष मॉडल हस्तिनापुर में बनकर तैयार हो-इसके लिए इनका ध्यान लगा रहा है। इसी कार्य की महत्ता को फैलाने हेतु 'जम्बूद्वीप ज्ञान ज्योति' का विचरण (प्रवर्तन) पूरे भारतवर्ष में हुआ, इन सब कार्यों से धार्मिकों के समाज में प्रसन्नता की लहर दौड़ रही है।

-शार्दूलविक्रीडित छंद-

विज्ञानं सकलानुयोगनिहितं यस्मिन् समाख्यायते,
सत्यान्वेषणकर्मणि प्रयतते दृष्ट्या च मध्यस्थया।
हिन्द्यां मासिकपत्रमेकमनया संप्रेरितं राजते,
सम्यग्ज्ञानमितिप्रसिद्धमखिले लोके जनानां प्रियम्।।14।।

इनकी प्रेरणा से 'सम्यग्ज्ञान' नामक एक हिन्दी मासिक पत्र भी प्रकाशित हो रहा है, जिसमें चारों अनुयोगों में निहित ज्ञान की सामग्री रहा करती है, साथ ही तटस्थ दृष्टि से सत्य के उद्घाटन का यत्न रहा करता है। यह पत्र सारे भारतवर्ष में लोकप्रिय एवं प्रसिद्ध हो चुका है।

-उपजाति छंद-

सत्संयमज्ञानविशुद्धिरस्याः, लोके प्रसिद्धाऽभवदार्यिकायाः।
स्वमातृ-संस्कार-शुभप्रभावः, तत्रास्ति मूलं, न हि संशयोऽत्र।।15।।

पूज्य आर्यिका ज्ञानमती जी के संयम व वैदुष्य की संसार में प्रसिद्धि जो हुई हे, उसके पीछे, निश्चय ही, अपनी माताजी पूज्य आर्यिका रत्नमती माताजी) के संस्कारों की छाप पड़ना एक कारण है, इसमें कोई संदेह नहीं।

वैराग्यभावादिकमार्यिकायाः, स्वकीयपुत्र्याः सकलं विलोक्य।
श्रीमोहिनी-मातृवराऽप्यगृह्णात्, शुभद्वितीयप्रतिमाव्रतानि।।16।।

श्री मोहिनी देवी ने जब देखा कि मेरी पुत्री 'मैना' वैराग्य में बढ़ते-बढ़ते 'आर्यिका' पद तक पहुँच गई है, तो उसने भी (पारिवारिक सीमा के कारण)

द्वितीय प्रतिमा का व्रत स्वीकार किया।

मनोवती पुत्र्यपरापि तस्याः, वैराग्यमार्गेऽभवदग्रगण्या।
आश्चर्ययुक्तान्स्वजनानकार्षीत्, सा ब्रह्मचर्यव्रतमाददाना।।17।।

इधर, श्रीमती मोहिनी देवी की दूसरी पुत्री 'मनोवती' भी वैराग्य मार्ग में अग्रसर होती रही। (एक दिन तो) आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण कर सभी को आश्चर्य चकित कर दिया।

क्रमेण सा संयममार्गचर्याम्, संवर्द्धयन्ती निजभावशक्त्या।
पदेऽध्यतिष्ठच्छुभ आर्यिकायाः, सद्-दृष्टिवर्गैरभवत्प्रणम्या।।18।।

और, वह यथाशक्ति संयम मार्ग की चर्या में क्रम से बढ़ते-बढ़ते (एक दिन) 'आर्यिका' भी बन गईं और सम्यग्दृष्टि श्रावक-श्राविकाओं के लिए नमस्करणीय हो गईं।

-मन्दाक्रान्ता छंद-

एषोऽन्वस्थादधिकरुचिना श्रावकाचारधर्मम्,
छोटेलालः सह गुणभृता मोहिनी-धर्मपन्त्या।
पुत्र्योर्लोकप्रथितयशसोर्भक्तिभावं वहद्भ्याम्,
ताभ्यां सम्यक् सुविधिविहितः पुत्रपुत्री-विवाहः।।19।।

इधर, श्रीमान् सेठ छोटेलाल जी अपनी गुणवती धर्मपत्नी 'मोहिनी' देवी के साथ श्रावकोचित धर्म में संलग्न रहे। अपनी दोनों पुत्रियों–जो अब प्रसिद्ध 'आर्यिका' बन चुकी थीं–के प्रति श्रद्धा रखते रहें। यथासमय, इन दोनों (दम्पति) ने लोकाचार के साथ पुत्रों व पुत्रियों का विवाह भी किया।

-मन्दाक्रान्ता छंद-

एतत्सर्वप्रमुखमहिलादिव्यरत्नाब्धिभूतः ,
छोटेलालो गृहपतिवरः स्वर्गलोकं प्रयातः।
तस्य पत्नी शुभगुणवती मोहिनी दुःखभारम्,
धीरा चित्तेऽसहत सकलं भावनाभिः शुभाभिः।।20।।

उक्त आर्यिका व ब्रह्मचारिणी रूपी सभी नारी रत्नों के आकर (समुद्र) सेठ श्री छोटेलाल जी का स्वर्गवास (25 दिसम्बर 1969 को) हो गया। इनकी गुणवती धर्मपत्नी मोहिनी देवी ने शुभ भावनाओं–अनुप्रेक्षाओं का चिन्तन करते हुए धैर्यपूर्वक समस्त दुःख को सहन किया।

मृत्योः पूर्वं गृहपतिरिमां मोहिनीमुक्तवान् यद्
''धर्मान्नित्यं जनहितकराद् मोहतो वारिताऽसि।
धर्मध्याने भवसि सुभगे साम्प्रतं त्वं स्वतन्त्रा,''
धृत्वोक्ताज्ञां निजगृहपतेर्नित्यमेवाचरत्सा।।21।।

अपनी मृत्यु से पूर्व श्रीमान् सेठ छोटेलाल जी ने धर्मपत्नी मोहिनी को अपने पास बुलाकर कहा था–''मैं संतानों के मोह में रहा, इसलिए जनकल्याणकारी धर्माचरण को करने से तुम्हें रोकता रहा। अब तुम स्वतंत्र होकर धर्मध्यान करती रहना।'' पतिदेव की इसी आज्ञा को शिरोधार्य कर श्रीमती मोहिनी हमेशा धर्मध्यानादि के आचरण में लगी रहीं।

-उपेन्द्रवज्रा छंद-

प्रशस्तभावानभिवर्द्धयन्ती, क्रमेण सर्वप्रतिमाव्रतानि।
अपालयत्सा गृह-संस्थिताऽपि, रुचिर्हि कार्यं सरलीकरोति।।22।।

श्रीमती मोहिनी देवी, घर में रहते हुए भी धीरे-धीरे अपने प्रशस्त भावों को बढ़ाती रही और उन्होंने क्रम-क्रम से तीसरी व पाँचवीं प्रतिमा के व्रत भी ग्रहण किये। ठीक भी है, जिस तरफ आत्मा की रुचि हो, वह कार्य, कठिन हो, तब भी सरल हो जाता है।

-उपजाति छंद-

तत्कामिनीतिप्रथिताङ्गजाऽपि, विवाहिताऽभूद् स्वजनप्रयासैः।
माता च तस्याः खलु मोहिनीयम्, रोढुं समैच्छत् पदमार्यिकायाः।।23।।

पारिवारिक जनों के प्रयास से उनकी सुपुत्री 'कामिनी' का विवाह भी सम्पन्न हुआ। इसके बाद तो श्रीमती मोहिनी देवी के मन में आर्यिका बनने की धुन जागृत हुई।

-वंशस्थ छंद-

पुरे प्रसिद्धे भुवि टोंकनामके, व्रतं शुभं सप्तममार्यसेवितम्।
सुविश्रुताचार्यवरात् पुरैव, गृहीतवत्यादृतधर्मसागरात्।।24।।

टोंक में जब परम प्रसिद्ध समादरणीय पूज्य आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज विद्यमान थे, उनसे वे पहले ही श्रेष्ठजन सेवित सातवीं प्रतिमा 'ब्रह्मचर्य' का व्रत भी ले चुकी थीं।

-उपजाति छंद-

धन्याऽऽर्यिका ज्ञानमती यदेताम्, निजोपदेशैरवबोधयन्ती।
संसारपक्षीयजनन्यवाप्ये, निःस्वार्थभावेन सहायिकाऽभूत्।।25।।

पूज्य आर्यिका ज्ञानमती माताजी धन्य हैं, जिन्होंने संसारपक्षीय अपनी माता को समय-समय पर सद्बोध देते हुए, उनके अभीष्ट की प्राप्ति में निःस्वार्थ सहायता करती रहीं।

-वंशस्थ छंद-

पुरेऽजमेरेतिसुविश्रुते महान्, जिनोक्तचारित्रनिधेरधीश्वरः।
प्रसिद्धविद्वन्मणि-'धर्मसागरः', समादृताचार्यवरः समागतः।।26।।

इसी दौरान जिनेन्द्रोपदिष्ट चारित्ररूपी निधि के स्वामी, विद्वन्मणि पूज्य समादरणीय आचार्य श्री धर्मसागर जी का अजमेर में (सन् 1971 में) शुभागमन हुआ।

-उपजाति छंद-

तेषां समक्षं विनयेन चैषा, न्यवेदयत् स्वीयशुभाभिलाषम्।
वृत्तान्तमाकर्ण्य तदा प्रजाताः, पुत्राश्च पुत्र्यो बहुदुःखिनोऽस्याः।।27।।

श्रीमती मोहिनी देवी ने 'आर्यिका' बनने की शुभ इच्छा आचार्य श्री के समक्ष व्यक्त की। जब वह समाचार इनके परिवारस्थ पुत्रादिकों को ज्ञात हुआ तो वे बड़े दुःखी हुए।

स्वमातुरस्वास्थ्यमिमेऽवलोक्य, सुचिन्तिताः स्वे मनसि प्रजाताः।
न्यवारयन् स्वैर्मधुरैर्वचोभिः, तामार्यिकात्वग्रहणोद्यतां ताम्।।28।।

परिवारवालों को चिन्ता थी कि माताश्री का स्वास्थ्य खराब चलता है और यह हैं कि घरबार छोड़कर आर्यिका बन रही हैं यह सब सोचकर वे मन में बड़े चिन्तित हुए। उन्होंने मीठे वचनों से समझाया भी कि आर्यिका न बनें।

असम्मतिं तत्र निवेदयन्तम्, समागतं तत्परिवारमीक्ष्य।
आचार्यवर्यप्रवरैस्तदानीम्, उत्साहमान्द्यं परिदर्शितं तैः।।29।।

श्रीमती मोहिनी देवी का सारा परिवार आचार्यवर के पास भी गया और उनके समक्ष सारी स्थिति स्पष्ट की। परिवार की असहमति देखते हुए उस समय आचार्यश्री के उत्साह में कमी भी आई।

त्यक्त्वा तदाऽऽहारचतुष्कमाशु, व्यपेतमोहा खलु मोहिनी सा।
गृहीतुमार्यश्रमणीत्वदीक्षाम्, दृढ़प्रतिज्ञात्वमदर्शयत्स्वम्।।30।।

किन्तु इधर श्रीमती मोहिनी देवी ने चारों प्रकार के आहार का त्याग कर दिया। नाम की वे मोहिनी जरूर थीं, पर उनका संसार से मोह हट चुका था। आर्यिका बनने की अपनी प्रतिज्ञा में वे दृढ़ ही बनी रहीं।

आचार्यवर्योऽपि परीक्ष्य सम्यक्, स्वाज्ञा-प्रदानेन समन्वगृह्णाद्।
मनोबले यस्य दृढत्वमस्ति, स्वकार्यसिद्धौ सफलः स नूनम्।।31।।

आचार्यश्री को उनकी दृढ़ता आदि को देखते हुए अन्त में उन्हें आर्यिका बनने की आज्ञा देकर अपना अनुग्रह प्रकट करना ही पड़ा। यह सच है कि जिसके मनोबल में दृढ़ता होती है, उसे अपने कार्य में सिद्धि मिलती ही है।

आचार्यवर्येण शुभे मुहूर्ते, दीक्षा प्रदत्ताऽऽगमसम्मताऽस्यै।
दत्वार्यिकायोग्यपदं, तदानीम्, समर्थिता रत्नमतीतिसंज्ञा।।32।।

आचार्यश्री ने शुभ मुहूर्त निश्चित कर आर्यिका की शास्त्रसम्मत दीक्षा इन्हें प्रदान की। दीक्षा देकर, इनका 'रत्नमती' नाम उन्होंने रखा।

-इन्द्रवज्रा छंद-

अष्टद्विशून्यद्विमितः शुभंयुः, पुण्योत्सवे तत्र च विक्रमाब्दः।
मासस्तदाऽसीत् शुभमार्गशीर्षः, कृष्णश्च पक्षः, सुतिथिस्तृतीया।।33।।

पुण्योत्सव के उस दिन 2028 विक्रमीय शुभ संवत् था, (ईसवी सन् 1971 में) मार्गशीर्ष (अगहन) का महीना, कृष्ण पक्ष तथा तृतीया तिथि का शुभ योग था।

पूज्यार्यिकाज्ञानमती-सुसंघे, रत्नत्रयाराधनतत्परास्ति।
संघस्थितानां खलु कल्पवृक्ष-च्छायेव सा सम्प्रति[1] सेवनीया।।34।।

आज वे पूज्य रत्नमती माताजी, आर्यिका ज्ञानमती जी के संघ में विराजमान हैं, रत्नत्रय की आराधना में वे तत्पर रहती हैं तथा संघस्थ अन्य (व्रतियों आदि) जनों के लिए कल्पवृक्ष की छाया की तरह आश्रयणीय व सेवनीय हैं।

संसारपक्षीय-तदीयकन्या, या [2]माधुरीतिप्रियनाम धत्ते।
भ्राता तदीयोऽपि रवीन्द्र[3]नामा, तौ ब्रह्मचर्यव्रतमाश्रयेते।।35।।

इन्हीं पूज्य रत्नमती माताजी के संसार पक्ष की एक अन्य कन्या जिसका

1. सन् 1984 में यह काव्यमयी जीवन परिचय लिखा गया है। 2. जो सन् 1989 में आर्यिका चन्दनामती बन चुकी हैं। 3. ये कर्मयोगी बनकर आज पूज्य माताजीके सर्वतोमुखी कार्यों को सम्पन्न कर रहे हैं।

प्यारा नाम 'माधुरी' है तथा उक्त माधुरी जी के भाई जिनका नाम श्री रवीन्द्र कुमार जी है, ये दोनों आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर उक्त संघ में विराजमान हैं।

-उपजाति छंद-

अनेकरत्नैरतिदीप्तिमद्भिः, यया प्रसूतैः समलंकृतोर्वी।
अन्वर्थसंज्ञामनवद्यकीर्तिम्, तामार्यिकां रत्नमतीं नमामि।।36।।

पूज्य आर्यिका श्री 105 रत्नमती माताजी, जिनके द्वारा प्रसूत (पुत्रादि) अनेक उज्ज्वल रत्नों से यह पृथ्वी अलंकृत हो रही है, अपने 'रत्नमती' नाम को सार्थक कर रही हैं। निर्दोष कीर्ति वाली इन आर्यिका श्री जी को मेरा नमन! मेरा नमन!

पूज्यार्यिका-'रत्नमती'-प्रशस्तिः, अकारि दामोदरशास्त्रिणेयम्।
मदीयभक्तिर्जिनपादपद्मे, सम्यक्त्व-वृद्ध्या सह वर्द्धिता स्यात्।।37।।

डॉ. दामोदर शास्त्री ने पूज्य श्री आर्यिका रत्नमती जी की प्रशंसा में इस पदावली की रचना की है। जिनेन्द्रदेव के चरण-कमलों में मेरी भक्ति एवं सम्यक्त्व की वृद्धि होती रहे, यही मंगलभावना है।

आदर्शों को अपना लूँ

रचयित्री-श्रीमती मालती जैन, बसंतकुंज, दिल्ली

इस जग में मां की ममता हर किस्मत वालों को मिलती है।
माँ होकर भी ममता न मिले यह बात अजब सी लगती है।।
बस इसी कहानी का चित्रण इक ग्रंथ रूप बन जाता है।
जहँ नहीं 'मालती' ममता का, केवल समता ही नाता है।।1।।

अपने-अपने बच्चों की माँ हर घर-घर में दिख जाती हैं।
पर घर में बच्चों को छोड़ा खुद बेघर बन हरषाती हैं।।
देखो तो! खुद के बच्चों का माँ कहने पे अधिकार नहीं।
जग की माता कहलाती हैं अपने बच्चों से प्यार नहीं।।2।।

दुनिया की हर बेटी अपनी माता को माता कहती है।
पर बेटी को माता कहकर माँ छोटी बनकर रहती है।।
ये ऐसी अद्भुत बातें हैं हर कोई समझ नहीं सकता।
मैं इनको कैसे लिख सकती ब्रह्मा भी परख नहीं सकता।।3।।

शब्दों को मैं कैसे रोकूँ, जो लिये खड़े हैं कर में माल।
''रत्नमती माँ'' के चरणों में झुका रहे हैं अपना भाल।।
पुष्प 'मालती' के चुन लाई लेकिन सुन्दरता कितनी है।
नहीं जानती सौरभ कितनी (फिर भी) लिखती हूँ मेरी जननी है।।4।।

धन्य धरा उस अवध प्रान्त की जिस माटी से फूल खिला ये।
मात-पिता भी धन्य हो गये जिनको सुख सौभाग्य मिला ये।।
भारत माँ झुक गई चरण में मेरा है माँ शृँगार आपसे।
इन गौरवशाली पृष्ठों का बढ़ता है माँ सम्मान आपसे।।5।।

नाम 'मोहिनी' सुन्दर था और थीं भी तुम इसके अनुकूल।
लेकिन 'मैना' की दीक्षा से मन में थी भारी सी शूल।।
गृह बंधन से कैसे मुक्ती मिले हमेशा यही सोचती।
घर में रहकर भी ऐसे थीं जैसे रहे सीप में मोती।।6।।

गृह बन्धन यद्यपि असार है फिर भी सार्थक हुआ आपसे।
'ज्ञानमती' सा रत्न मिला इस भूतल को वरदान आपसे।।

बच्चों को ऐसी शिक्षा दी रुक न सके धन वैभव में भी।
सबने कदम बढ़ाना चाहा त्याग मार्ग पर शैशव में ही।।7।।

दान-मान सम्मान बाँटने की अद्भुत थी तुममें क्षमता।
हर गरीब की आवश्यकता पर सदा लुटाई तुमने ममता।।
कहती थीं ये फर्ज हमारा हम क्या कर सकते हैं दान।
मिल कर रहें बाँट कर खायें जीवन का यह लक्ष्य महान।।8।।

दिया हुआ कुछ कितने दिन तक कर सकता किसको आबाद।
लेकिन रह जाती हैं यादें और गरीबों की फरियाद।।
इससे ऊँचा उठता मानव मिट जाता है दुख संताप।
मुट्ठी भर दोगे पहाड़ सम मिल जाता है अपने आप।।9।।

घर में रहकर भी चतुराई और धर्म का जो आलम।
मिल पायेगा मुश्किल से ही सुन्दरता का वो कालम।।
श्रद्धा ज्ञान विवेक त्रिवेणी के संगम की मूरत थीं।
शुद्ध आचरण की शिक्षा की सबसे बड़ी जरूरत थीं।।10।।

जीवन को आदर्श बनाने की पहली आधार शिला।
'खानदान शुद्धी' मिल जाये जो की अपने आप मिला।।
दूजी थोड़ा कष्ट साध्य है खानपान से शुद्धी हो।
जिसके घर में यह मिल जाये, समझो अच्छी बुद्धी हो।।11।।

चाह जहाँ है राह वहाँ पर ऐसा सुनती थी मैं अब तक।
दीक्षा के दिन देख रही मैं रोक रहे घर वाले जब सब।।
आखिर जीत हुई विराग की ''धर्मसिंधु'' का वो दरबार।
''रत्नमती जी'' नाम रख दिया छुटा मोहिनी का संसार।।12।।

ममता की तुम मूरत थीं औ थीं शरीर से बिल्कुल नाजुक।
लिया आर्यिका का दुर्द्धर व्रत जग वाले सब करते ताज्जुब।।
शान्ति साधना की साधक बन समता की जो सीख सिखाई।
धर्म अर्थ अरु काम मोक्ष की सही दिशा तुमने अपनाई।।13।।

दुनियाँ की हर शक्ती माँ तेरे चरणों में नतमस्तक है।
ऐसी माता मिले ''मालती'' मुक्ति नहीं मिलती जब तक है।।

इस भव की सुख शांती में ही जिनका केवल ध्यान नहीं है।
परभव में क्या संग जायेगा सिखा रही पहचान रही हैं।।14।।

शब्द 'मालती' की यह माला चरणों में अर्पण करती हूँ।
हमको भी यह शक्ती दो माँ बार-बार वंदन करती हूँ।।
जिस पथ पर हैं कदम आपके मैं भी उस पर कदम बढ़ा लूँ।
जीवन यह पाया तुमसे है आदर्शों को भी अपना लूँ।।15।।

सत् नारी का बलिदान कभी, इस जग में व्यर्थ नहीं जाता

-ब्र. रवीन्द्र कुमार जैन

सत् नारी का बलिदान कभी, इस युग में व्यर्थ नहीं जाता।
इनके बलिदानों के बल पर, हर देश नया गौरव पाता।।

क्या धर्मनीति क्या राजनीति, हर जगह सुखों की समता है।
भारत माता के साये में, सबको ही मिलती ममता है।।

हर माँ का आँचल ममता के, कोमल फूलों से भरा हुआ।
हर घर का आँगन संस्कारों के, कुन्द पुष्प से सजा हुआ।।

इस देश की पावन धरती को, तुम जैसी माँ ने धन्य किया।
अपने गुण पुष्पों की खुशबू से, तुमने निज को धन्य किया।।

स्वर्णिम सुरभि ने मोहिनी के, अविनश्वर सुख को प्रगट किया।
है आज देश का भी मस्तक, इनके चरणों में झुका हुआ।।

अपने इन सीमित शब्दों से, माँ का कीर्तन क्या कर सकते।
बस इन्हीं प्रसूनांजलियों से, हम सदा इन्हें वंदन करते।।

मेरे स्वप्नों की मंजिल का नहीं किसी से नाता

-सुभाषचंद जैन, टिकैतनगर

मेरे मन का मोह हृदय का गीत किसे है भाता।
मेरे स्वप्नों की मंजिल का नहीं किसी से नाता।।

माँ की यादों के सागर में मैं नित विचरण करता।
हर प्यासी गागर अपने आँसू से भरता रहता।।
नहीं भूल पाता हूँ वह मधुरिम क्षण गीत सुनाता।
मेरे स्वप्नों की मंजिल का नहीं किसी से नाता।।

मैं अपने मुरझाये मन को कैसे हरा बनाऊँ।
सूनी बगिया में कोयल का गीत कहाँ से लाऊँ।।
मैं अपने आँगन को ही ममता से रीता पाता।
मेरे स्वप्नों की मंजिल का नहीं किसी से नाता।।

यही सोचकर कुछ मन को संतोष दिलाया करता।
होनी सो हो गई इसे ना टाल कोई भी सकता।।
गृह बंधन को तोड़ दिया बन गई जगत की माता।
मेरे स्वप्नों की मंजिल का नहीं किसी से नाता।।

एक नहीं सारा जग आकर झुकता तव चरणों में।
संयम की इस पदवी को है नमन किया इन्द्रों ने।।
मैं अपने श्रद्धा पुष्पों से नित नत करता माथा।
मेरे स्वप्नों की मंजिल का नहीं किसी से नाता।।

शीश हमेशा झुका रहे

-श्रीमती त्रिशला जैन, लखनऊ (उ.प्र.)

नहीं लेखनी लिख सकती है जिनके जीवन की गुणगाथा।
इस युग में भी हो सकती है ऐसी धर्म परायण माता।।
है होता गर्व मुझे खुद पर जो ऐसी माँ से जन्म लिया।
सब पुत्र-पुत्रियों को हरदम जिनने सच्चा उपदेश दिया।।

वह याद दिवस अब भी मुझको जब घर संदेशा पहुँचा था।
माँ अब घर में ना आयेगी सुन घर का कण-कण रोया था।।
पर सोचा तभी भाइयों ने सब चलकर उन्हें मनायेंगे।
सामायिक पर जब बैठी हों हम उन्हें उठाकर लायेंगे।।

अजमेर नगर में पहुँच सभी ने माँ के चरणों को पकड़ लिया।
इस तरह अनाथ बनाओ न कह-कहकर करुण विलाप किया।।
तब माँ बोली देखो बेटे यह तो शरीर का नाता है।
इस जग में सभी प्राणियों को यह मोहकर्म रुलवाता है।।

इसलिए मोह में मत बाँधो मुझको अब दीक्षा लेने दो।
अब बेटी के जीवन से कुछ मुझको भी शिक्षा लेने दो।।
अब तक इस मोह कर्म ने ही हमको घर में रोके रक्खा।
अब समझ गई हूँ दुनियाँ के इन क्षणिक सुखों में क्या रक्खा।।

सबने फिर मौन सम्मति से माँ के चरणों में नमन किया।
उस पथ पर हम भी चलें कभी जिसका तुमने अनुकरण किया।।
हम सबको दो आशीर्वाद जिससे हमको यह शक्ति मिले।
जिस माँ की छाया थी अबतक उसकी ही छाया पुनः मिले।।

जो त्यागमार्ग की हैं देवी ऐसी माँ को शत-शत प्रणाम।
जो परमशांत मुद्राधारी ऐसी माँ को शत-शत प्रणाम।।
जब तक है चन्द्र सूर्य जग में जीवन की ज्योती जला करे।
''त्रिशला'' का माँ के चरणों में यह शीश हमेशा झुका रहे।।

धन्य धन्य हे रत्नमती तव, चरणन कोटि प्रणाम हैं

-श्री विमल कुमार जैन सोंरया शास्त्री, टीकमगढ़

जिनके यश गौरव से गौरवान्वित यह विश्व ललाम है।
धन्य धन्य हे रत्नमती तव चरणन कोटि प्रणाम है।।

मानतुंग ने करी वन्दना तुम जैसी सतनारी की,
धन्य धरा की पूज्य मातु करता वन्दन भवतारी की।
पुत्री एक कोटि पुत्रों से सौ सौ कोटि कदम आगे,
निज के आत्म प्रबल पौरुष से कर्म मोह भट हैं भागे।
ज्ञानमती सम बेटी से उठ गया तुम्हारा नाम है,
धन्य धन्य हे रत्नमती तव चरणन कोटि प्रणाम है।

ज्ञान विपुल तप अतुल आचरण की समता जो कर न सके,
संयम की साधक छैनी से आत्म सिद्धि को साध सके।
नभ के कोटि कोटि तारों में एक चन्द्रमा की शोभा,
अतः कोटि नारी में तुम भी मात धरातल की आभा।
संयम की साधक माता युग युग का तुम्हें प्रणाम है,
धन्य धन्य हे रत्नमती तव चरणन कोटि प्रणाम है।

क्या आदर्श तुम्हारे जीवन का गाथाओं में गाऊँ,
पुण्य पुरुष के पुन्य पुराणों में चरित्र लिख हर्षाऊँ।
युग का वह इतिहास आज कलिकाल समय में आया है,
माँ तुमने सद्पुत्र पुत्रियों को संयम पर पहुँचाया है।
जिनके यश गौरव से गौरवान्वित यह विश्व ललाम है,
धन्य धन्य हे रत्नमती तव चरणन कोटि प्रणाम है।

कुल की गौरव युग की गौरव धरती की गौरव माता,
जिनवाणी की सहोदरा तुम तो जगती तल की माता।
जब तक नभ में दिनकर चमके लहराए भूपर सागर,
संयम साधित गौरव की नित भरी रहे जीवन गागर।
जन जन तारक जग हित कारक युग का तुम्हें प्रणाम है,
धन्य धन्य हे रत्नमती तव चरणन कोटि प्रणाम है।

भजन

रचयित्री-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

तर्ज-दे दी हमें आजादी.....

दे दी जगत को ज्ञानमती मात सी मिसाल।
हे रत्नमती मात! तुमने कर दिया कमाल।। टेक.।।

तुमको दहेज में मिला इक ग्रन्थ अनोखा।
श्री पद्मनन्दिपंचविंशती था अनूठा।।
उस ग्रंथ के स्वाध्याय का रक्खा सदा ख्याल।
हे रत्नमती मात तुमने कर दिया कमाल।।1।।

संसार से विराग का उससे सबक मिला।
तब ज्ञानमती नाम का पहला कुसुम खिला।।
इनसे जली है ज्ञानज्योति की नई मशाल।।
हे रत्नमती मात तुमने कर दिया कमाल।।2।।

माताओं के लिए तेरी आदर्श कहानी।
जीवित सदा रहेगी तेरी त्याग निशानी।।
माता स्वयं पुत्री के चरण में नवाती भाल।।
हे रत्नमती मात तुमने कर दिया कमाल।।3।।

यह जम्बूद्वीप की कृती तेरी ही कृती है।
उसके सभी कणों में बसी रत्नमती हैं।।
माता की वंदना में 'चंदना' का झुका भाल।।
हे रत्नमती मात तुमने कर दिया कमाल।।4।।

भजन

रचयित्री-बाल ब्र.कु. माधुरी शास्त्री

तीरथ करने चली मोहिनी, शान्ति मार्ग अपनाने को।
धर्मसागराचार्य संघ में, ज्ञानमती श्री पाने को।।

एक बार जब गई मोहिनी, साधु चतुर्विध संघ जहाँ।
वह अजमेर धर्म की नगरी, दिखता चौथा काल वहाँ।।
तीर्थवंदना शुरू वहीं से, हुई मुक्तिपथ पाने को।
धर्मसागराचार्य संघ में, ज्ञानमती श्री पाने को।।

धन्य तिथि मगसिर बदि तृतिया, वरदहस्त गुरु का पाया।
संयम की अनमोल डोर वे, भवसागर से तिरवाया।।
रत्नमती बन गई मोहिनी, गाथा अमर बनाने को।
धर्मसागराचार्य संघ में, ज्ञानमती श्री पाने को।।

सुखशान्ती का वैभव पाकर कहें मोहिनी माता है।
जैनी दीक्षा त्याग तपस्या, का विराग से नाता है।।
जग की ममता नहीं ''माधुरी'' हुई सफल माँ पाने को।
धर्मसागराचार्य संघ में, ज्ञानमती श्री पाने को।।

भजन

रचयित्री-ब्र.कु. माधुरी शास्त्री

रत्नमती माताजी को हम नित प्रति शीश झुकाते हैं।
उनके मंगल आदर्शों का किंचित् दर्श कराते हैं।।टेक.।।
नारी शील कहा जग में, आभूषण अवनीतल में।
सर्व गुणों की छाया है, कैसी अनुपम माया है।।

इसीलिए इस नारी ने, तीर्थंकर से पुत्र जने।
भारत जिससे धन्य हुआ, सर्वकला सम्पन्न हुआ।।
यहीं वृषभ तीर्थंकर ने, आदिब्रह्म शिवशंकर ने।
शांति मार्ग को बतलाया, जग में जीना सिखलाया।।

यहीं है सीतापुर नगरी, जहाँ महमूदाबाद पुरी।
वहीं मोहिनी जन्म लिया, जीवन जिनका धन्य हुआ।
भक्तिसुमन का हार लिये हम, माँ के चरण चढ़ाते हैं।
उनके आदर्शों को पालें, यही भावना भाते हैं।।1।।

मोहिनि से इक निधी मिली, संस्कारों की विधी फली।
मैना का जब जन्म हुआ, इक अपूर्व आनंद हुआ।।
मैना पिंजड़े से उड़कर, गृह बंधन में ना पड़कर।
आई इस भूमण्डल पर, ज्ञानमती माता बनकर।।

सरस्वती अवतार हुआ, चकित आज संसार हुआ।
जिनकी ज्ञान कलाओं से, भाव भरी प्रतिभाओं से।।
वर्णन हम क्या कर सकते, जग को नहिं बतला सकते।
उन अनन्य उपकारों को, सम्यग्ज्ञान विचारों को।।

भक्तिसुमन का हार लिए हम, माँ के चरण चढ़ाते हैं।
उनके आदर्शों को पालें, यही भावना भाते हैं।।2।।

जो कुछ भी है तेरा है, माँ का ही सब घेरा है।
माँ के संस्कारों की दुनियाँ, जिनका साँझ सबेरा है।।
उनमें ही अवतीर्ण हुआ, एक चाँद विस्तीर्ण हुआ।
शीतल चन्द्र रश्मियों से, अमृतमयी झरिणियों से।।

मानो सुधाबिन्दु झरतीं, स्याद्वाद वाणी खिरती।
ज्ञानमती का ज्ञान विमल, शुद्धात्मा श्रद्धान अमल।।
तुमने उन्हें प्रदान किया, निज का भी उत्थान किया।
रत्नत्रय को प्राप्त किया, आत्मतत्त्व श्रद्धान किया।।

भक्तिसुमन का हार लिए हम, माँ के चरण चढ़ाते हैं।
उनके आदर्शों को पालें, यही भावना भाते हैं।।3।।

माता हो तो ऐसी हो, जीवन परम हितैषी हो।
मोक्षमार्ग में साधक हो, मिथ्यातम में बाधक हो।।
जाने कितनी माताएँ, सन्तानों की गाथाएं।
केवल ममता भरी कथा, छिपी हृदय में मोह व्यथा।।

पर क्या कोई कर सकता, आत्मनिधी को भर सकता।
निधी 'माधुरी' आत्मा में, प्रगट किया परमात्मा ने।।

जैनधर्म महिमाशाली, ग्रहण करे प्रतिभाशाली।
सुखद शान्ति का दाता है, परमातम प्रगटाता है।।
भक्तिसुमन का हार लिए हम, माँ के चरण चढ़ाते हैं।
उनके आदर्शों को पालें, यही भावना भाते हैं।।4।।

भजन

तर्ज-झूठ बोले कौआ काटे.....

अम्मा रूठे पापा रूठे, रूठे भाई और बहना।
मैं दीक्षा लेने जाऊँगी तुम देखते रहना।।

माँ – मानो बेटी बात हमारी आयु अभी तोड़ी है।
इतनी आयु में क्यों बिटिया त्याग से ममता जोड़ी है।
दीक्षा में है कष्ट घनेरे तुमरे बस की न सहना।।
मैं दीक्षा लेने जाऊँगी.....

माताजी – कष्टों का ही नाम है जीवन क्यों घबराती हो माता।
झूठे सांसारिक सुख हैं और झूठा है जग का नाता।
वीरा के चरणों में बीते....मेरे दिन और रैना।
मैं दीक्षा लेने जाऊँगी.....

पिताजी – ऐसा ना सोचो बिटिया तुम बड़े लाड़ से पाली हो।
सम्पन्न है परिवार ये सारा फिर भी कोठी खाली हो।
हम बेटी हैं बाप तुम्हारे....कहना मान लो अपना।।
मैं दीक्षा लेने जाऊँगी.....

भाई – माँ का कहना मानो दीदी हम सब तुमरी चरण पड़े।
कैसे मन को कड़ा करोगी जब हम रोयेंगे खड़े खड़े।
रक्षाबंधन जब आयेगा....मेरे याद आये बहना।।
मैं दीक्षा लेने जाऊँगी.....

समझाया सब घर वालों ने कोई रहा नहीं बाकी
छोटे भाई रोते आये हाथ में लेके इक राखी।
इसको बहना बांधती जाओ.....ये है प्यार का गहना।।
मैं दीक्षा लेने जाऊँगी....तुम देखते रहना।। अम्मा रूठे....

भजन

मैं तुलसी तेरे आँगन की....

मैं सेवक तेरे चरणन का।
पूरा करो माँ-पूरा करो माँ
लक्ष्य तरणन का।।मैं सेवक.....

जो भी तेरे दर पे आता
खाली ना वो लौट के जाता
पाता लाभ तेरे दर्शन का
मैं सेवक तेरे चरणन का।।

जैन अजैन माँ जो भी आए
मनवांछित फल वो पा जाए
क्षय चाहे अपने करमन का
मैं सेवक तेरे चरणन का।।

मान करे सम्मान करे माँ
हर पल तेरा ध्यान करे माँ
सबको चाव तेरे सुमरन का
मैं सेवक तेरे चरणन का।।

जन्म जन्म से साथ हूँ तेरे
अब तो कटें भव बंधन मेरे।
मैं अभिलाषी तेरे दरशन का
मैं सेवक तेरे चरणन का।।

भजन

रचयित्री-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

(मैना से ज्ञानमती)

इक रात को इक माता पुत्री का आपस में संवाद चला।
तुम राग विराग कथाएं सुनकर बोलो किसका स्वाद भला।।टेक.।।

मां 'मोहिनी' थी बेटी 'मैना' दोनों ममता की मूरत थीं।
ममकार नहीं था दोनों में केवल मकार की सूरत थीं।।
'मैना' संज्ञा सार्थक करने हेतू मैना का स्वर बदला।।तुम.।।1।।

माता की ममता पिघल पिघल कर आँसू बनकर निकल रही।
बेटी का दृढ़ निश्चय सुनकर मोहिनी और भी विकल हुई।।
मां बोली कच्ची कली मेरी तू क्या जाने परिणाम भला।।तुम.।।2।।

पुत्री बोली कच्ची कलियों ने भी यह त्याग निभाया है।
देखो चन्दनबाला ब्राह्मी मां ने इतिहास बनाया है।।
मैं भी वह पथ अपनाऊंगी दो आज्ञा माँ! इक बार भला।।तुम.।।3।।

जैसे जम्बूस्वामी ने अपनी चार पत्नियों के संग में।
वैराग्य कथा जारी रक्खी नहिं रमें रानियों के रंग में।।
फिर प्रातः महल तजा उनने दीक्षा लेकर जीवन बदला।।तुम.।।4।।

वैसे ही मैना ने अपनी माता को कथा सुनाई थी।
श्री पद्मनन्दि आचार्य रचित दुर्लभ पंक्तियां सुनाई थीं।।
मां कबसे हम सबका चारों गतियों में परिवर्तन न टला।।तुम.।।5।।

कभी इन्द्र का पद पाया मैंने कभी नरक निगोदों में भटका।
तिर्यंच मनुज पर्यायों में बस यूँ ही पड़ा रहा अटका।।
बहु पुण्ययोग से श्रावक कुल में सच्चे ज्ञान का दीप जला।।तुम.।।6।।

मां बोली ये सब शास्त्रों की बातें तुमने अपना ली हैं।
पर सदी बीसवीं में बोलो किस कन्या ने दीक्षा ली है।।
तुम जैसी सुकुमारी कन्या के बस की नहीं विराग कला।।तुम.।।7।।

फिर एक चुनौती प्यार भरी दे मैना मां से बोल पड़ी।
यदि तुम मेरी सच्ची मां हो तो दे दो स्वीकृति इसी घड़ी।।
हे मां! अब तक तो ममता दी अब समता की नव ज्योति जला।।तुम.।।8।।

विश्वास मात को था मेरी बेटी दृढ़ नियम निभाएगी।।
पर सोच रही मेरी बच्ची कैसे यह सब सह पाएगी।
इतिहास अगर यह रच देगी तो बालाओं का मार्ग खुला।।तुम.।।9।।

सच्ची मां का कर्तव्य सोच माता ने स्वीकृति दे डाली।
अवरुद्ध कंठ से बोल पड़ीं बेटी मैं बड़ी भाग्यशाली।।
हो गई विजय वैराग्य पक्ष की राग मोह तब हार चला।।तुम.।।10।।

वैराग्य के ये अंकुर मैना ने बचपन से ही उगाए थे।
उनको पुष्पित करने मानो इक मुनिवर अवध में आए थे।।
बाराबंकी में देशभूषणाचार्य गुरू का संग मिला।।तुम.।।11।।

सन् बावन की आश्विन शुक्ला चौदश रात्री की यह घटना।
तब शरदपूर्णिमा को प्रातः मैना ने पूर्ण किया सपना।।
निज जन्मदिवस ही ब्रह्मचर्यव्रत पा मानो शिवद्वार खुला।।तुम.।।12।।

मां बेटी की ये चर्चाएं जग को आदर्श सिखाती हैं।
कर सको न यदि तुम त्याग तो पर को मत रोको समझाती हूँ।।
''चन्दनामती'' उस माँ ने पुनः अपने जीवन को भी बदला।।तुम.।।13।।

माता मोहिनी एवं मैना का संवाद

रचयित्री-आर्यिका चन्दनामती

तर्ज-बार-बार तोहे क्या समझाऊँ.....

माता मोहिनी– बार-बार समझाऊँ बेटी, मान ले मेरी बात।
तेरे जैसी सुकुमारी की, दीक्षा का युग है न आज।।टेक.।।

मैना – भोली भाली माता मेरी, सुन तो मेरी बात।
हम और तुम मिलकर ही, युग को बदल सकते आज।।टेक.।।

माता – तूने तो बेटी अब तक, संसार न कुछ देखा है।
फिर भी मान लिया क्यों इसको, यह सब कुछ धोखा है।।
खाने और खेलने के दिन, क्यों करती बर्बाद।
तेरे जैसी सुकुमारी की, दीक्षा का युग है न आज।।1।।

मैना – प्यारी माँ इस नश्वर जग में, कुछ भी नया नहीं है।
जो कुछ भोगा भव भव में, बस दिखती कथा वही है।।
ग्रन्थों से पाया मैंने, हे माता ज्ञान का स्वाद।
हम और तुम मिलकर ही, युग को बदल सकते आज।।1।।

माता – ये सुन्दर गहने मैना, मैं तुझको पहनाऊँगी।
अपनी गुड़िया सी पुत्री की, शादी रचवाऊँगी।।
सजधज कर जब बनेगी दुलहन, शरमाएगा चाँद।
तेरे जैसी सुकुमारी की, दीक्षा का युग है न आज।।2।।

मैना – तेरी प्यारी बातों में माँ, मैंना नहिं आयेगी।
सोने चाँदी के गहनों को, वह न पहन पाएगी।।
रत्नत्रय का अलंकार बस, मुझे पहनना मात।
हम और तुम मिलकर ही, युग को बदल सकते आज।।2।।

माता – मेरी बात न मान तो अपने, पिता का ख्याल तो करले।
पुत्ररूप में माना तुझको, उनसे कुछ तो समझ ले।।
वे नहिं सह पाएंगे तेरे, कठिन त्याग की बात।
तेरे जैसी सुकुमारी की, दीक्षा का युग है न आज।।3।।

मैना – मैंने अपने पिता का सचमुच, प्रेम अथाह है पाया।
तेरी ममता की मुझ पर तो, सदा रही है छाया।।
फिर भी तू ही समझा सकती है, पितु को सब बात।
हम और तुम मिलकर ही, युग को बदल सकते आज।।3।।

माता – मेरे बस की बात नहीं, तेरे भाई-बहन समझाना।
सब रोकर बोले हैं जीजी, को लेकर ही आना।।
तू ही मेरे घर की रौनक, तू मेरी सौगात।
तेरे जैसी सुकुमारी की, दीक्षा का युग है न आज।।4।।

मैना – मोह की बातें कर करके माँ, मुझे न अब भरमाओ।
मेरे भाई बहनों को अब, प्यार से तुम समझाओ।।
माता की गोदी में उन्हें, जीजी की रहे न याद।
हम और तुम मिलकर ही, युग को बदल सकते आज।।4।।

माता –तेरी वैरागी बातों से, मैं तो पिघल जाती हूँ।
पर तेरे बिन घर कैसे, जाऊँ न समझ पाती हूँ।।
मेरी मैना मुझे छोड़ क्या, रह लेगी दिन-रात।
तेरी जैसी सुकुमारी की, दीक्षा का युग है न आज।।5।।

मैना – माँ मैंने अपने मन में, दृढ़ निश्चय यही किया है।
गृह पिंजड़े से उड़ने का, मैंने संकल्प लिया है।।
तू प्यारी माँ देगी आज्ञा, मुझे है यह विश्वास।
हम और तुम मिलकर ही, युग को बदल सकते आज।।5।।

माता – आज है पुत्री शरदपूर्णिमा, तेरा जनमदिन आया।
आज के दिन तूने अपना, यह निर्णय मुझे सुनाया।।
पत्थर दिल करके बेटी मैं, देती आज्ञा आज।
सुखी रहे मैना मेरी, यह ही है आशीर्वाद।।6।।

(कागज पर स्वीकृति लिखकर मैना को देती है)

मैना – जनम जनम के पुण्य से मैंने, तुझ जैसी माँ पाई।
तेरे ही संस्कारों की तो, मुझ पर है परछाईं।।
ग्रन्थ दहेज में मिला तुझे जो, मैंने चखा वह स्वाद।
उस ग्रंथ के अध्यन से, मुझको हुआ है वैराग।।6।।

माता – तूने जम्बूस्वामी जैसा, मुझे आज समझाया।
बालब्रह्मचारिणी प्रथम हो, सफल तेरी यह काया।।
युगयुग यश फैलेगा तेरा, मुझे है यह विश्वास।
मुझको भी इक दिन लेना, गृहबन्धन से निकाल।।7।।

मैना – आज ही सच्चा जनम हुआ है, मेरा मैंने माना।
शरदपूर्णिमा का महत्त्व अब, ठीक से मैंने जाना।।
ब्रह्मचर्य सप्तम प्रतिमा ले, मैंने किया गृह त्याग।
दीक्षा ग्रहण कर मुझको, असली मिलेगा साम्राज।।7।।

सूत्रधार – जनम से जिनके धन्य हुई है, शरदपूर्णिमा रात।
संयम के द्वारा उसी, पूनो का सार्थक प्रभात।।
जग वालों देखो वही कन्या, ज्ञानमती कहलाई।
उनकी दीक्षा स्वर्ण जयंती भी सबने है मनाई।।
सदी बीसवीं के ये गणिनी, प्रमुख हुई विख्यात।
हम सब उन्हीं माता का, पाएँ सदा ही आशिर्वाद।।8।।

आरती

ॐ जय जय रत्नमती, माता जय जय रत्नमती।
मनहारी सुखकारी, तेरी शांत छवी।।ॐ जय.।।टेक.।।
मोहिनि से बन रत्नमती यह, पद सच्चा पाया। माता.....
कितने रत्न दिये तुम जग को, तज ममता माया।।ॐ जय.।।
पूर्व दिशा रवि से मुखरित हो, जग तामस हरतीं। माता.....
ज्ञानमती सा रवि प्रगटाकर, मिथ्यातम हरतीं।। ॐ जय.।।
रत्नत्रय में लीन सदा तुम, संयम साध रहीं। माता.....
यही कामना करे '' चंदना'', पाऊँ मोक्ष महीं ।। ॐ जय.।।

आर्यिका श्री रत्नमती माताजी की कतिपय चित्रमयी झलकियाँ

दीक्षा से पूर्व आर्यिका श्री रत्नमती माताजी
(माता मोहिनी देवी)

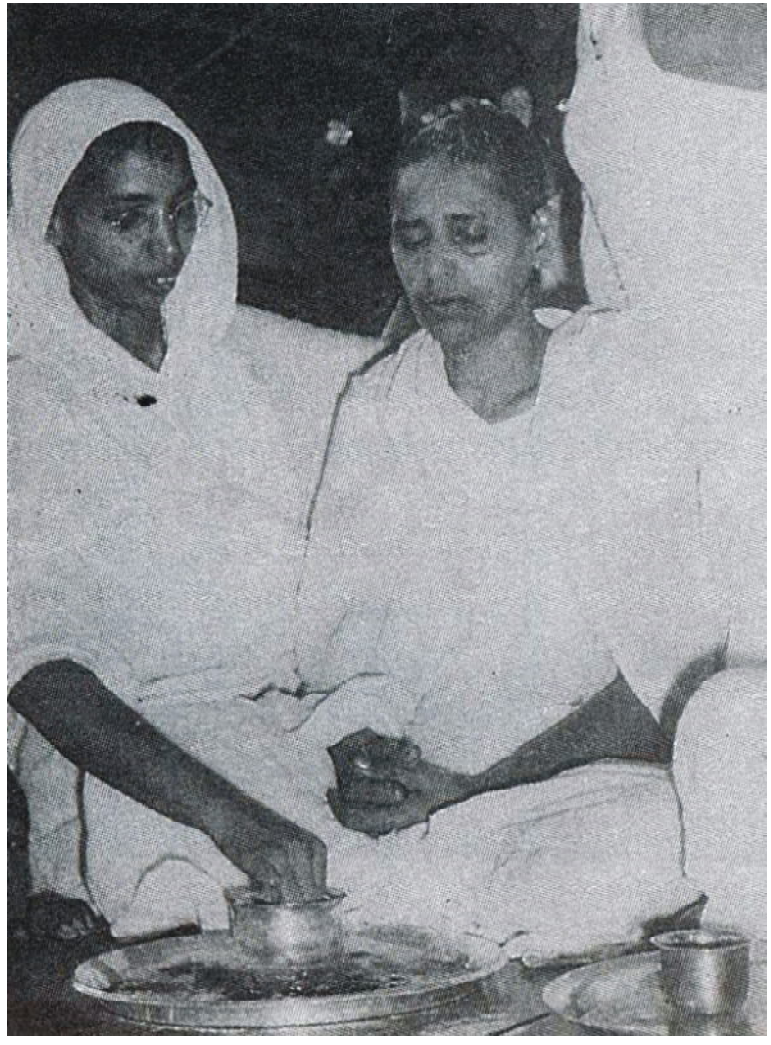

दीक्षा के समय माता मोहिनी देवी का केशलोंच
करतीं आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी
(सन् 1971, अजमेर)

पूज्य आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी के साथ आर्यिका श्री रत्नमती माताजी
(सन् 1981, जम्बूद्वीप)

मोक्षमार्ग पर आरूढ़
आर्यिका श्री रत्नमती माताजी की तीन सुपुत्रियाँ

गणिनीप्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी

चारित्रश्रमणी आर्यिका
श्री अभयमती माताजी

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका
श्री चंदनामती माताजी